RNI : UPHIN/2009/30450

ISSN : 2319-2178

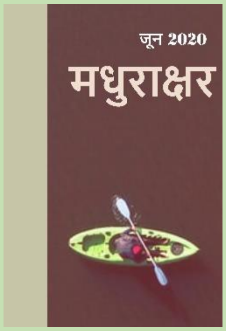

संरक्षक परिषद

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
डॉ. कृष्णा खत्री
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय

विशेषज्ञ परिषद

डॉ. सुहासिनी बाजपेयी
डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
डॉ. आरती वर्मा
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
श्री जयकेश पाण्डेय

संपादक परिषद

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री (संपादक)
डॉ. प्रशांत द्विवेदी (सह-संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय (उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह (उप-संपादक)
डॉ. ऋचा द्विवेदी (प्रबंध संपादक)

परामर्श परिषद

श्री मनस्वी तिवारी
श्री राम सुभाष
श्री मृत्यंजय पाण्डेय
श्री जयेन्द्र वर्मा
श्री सुरेशचंद्र सर्वहारा

संस्थापक एवं प्रकाशक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक
पुनर्निर्माण की पत्रिका

जून, 2020
वर्ष : 12, अंक : 01, पूर्णांक : 28

मूल्य
एक प्रति : 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए
वार्षिक : 110 रुपये
त्रैवार्षिक : 300 रुपये
आजीवन : 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए
वार्षिक : 150 रुपये
त्रैवार्षिक : 450 रुपये
आजीवन : 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)
एक अंक : 6 $
वार्षिक : 24 $
आजीवन : 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code - 212002004) में करें। फतेहपुर से बाहर के चेकों व बाह्य-अन्तरण में बैंक शुल्क रुपये 60 अतिरिक्त जमा करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

(RNI : UPHIN/2009/30450, ISSN : 2319-2178)

जून, 2020

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

E-Mail : madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.com
www.madhurakshar.blogspot.com
www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

एक नज़र में...

संपादकीय
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री : अपनी बात

कलम को नमन
नागार्जुन – अनूप शुक्ल
विष्णुकांत शास्त्री – डॉ. ऋचा द्विवेदी

काव्य-सुरसरि
ममता जयंत
आयुष झा
दीप्ति शर्मा
संजय छीपा
नरेश गुर्जर
एस. एस. पंवार
शालिनी सिंह
अनुराधा अनन्य
सीमा संगसार
अंजली शुक्ला

कथा-साहित्य
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय
देवी नागरानी
डॉ. कृष्णा खत्री
आनंद कुमार शुक्ल
डॉ. पूरन सिंह

कथेतर गद्य
प्रो. हितेन्द्र कुमार मिश्र
आकांक्षा यादव
डॉ. मो. हसीन खान
नीरजा दुबे
प्रेम नंदन

अनूदित साहित्य
फ्रेंच काफ़्का (जर्मन) – सुशांत सुप्रिय
गुलाम अब्बास (उर्दू) – डॉ. दीपक त्रिपाठी
अपर्णा महांति (उड़िया) – दिब्य रंजन साहू

कृति- चर्चा
डार्क हॉर्स : नीलोत्पल मृणाल
अपना मोर्चा : काशीनाथ सिंह
भटका हुआ परिंदा : जयेन्द्र कुमार वर्मा
सपनों की होम डिलिवरी : ममता कालिया
रस्सी पर चलती लड़की : भगवान वैद्य 'प्रखर'

संपादकीय

अपनी बात

चीनी यात्री ह्यू-एन-त्सांग ने नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा पूर्ण कर कुछ दिनों तक वहीं अध्यापन-कार्य भी किया। कुछ समय के पश्चात् उसने स्वदेश जाने का निश्चय किया। जब अन्य चीनी विद्यार्थियों को इस सम्बन्ध में जानकारी हुई तो उनमें से पंद्रह विद्यार्थी भी ह्यू-एन-त्सांग के साथ चल पड़े, जिससे उनके सत्संग का लाभ वे उठा सकें। ह्यू-एन-त्सांग ने नालंदा विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए कुछ ग्रंथ क्रय किये थे और कुछ ग्रंथों की रचना भी कि थी, उन्होंने सभी ग्रंथों को भी अपने साथ ले जाने का निश्चय किया। एक नौका तय की गयी, और वे सभी ग्रंथों के साथ वहां से चल पड़े. दुर्भाग्य से रास्ते में भयानक तूफान आ गया जिससे नौका हिंडोले खाने लगी। नाविक ह्यू-एन-त्सांग से बोला- 'महाशय, यह नाव भारी हो गयी है। आगे जाना मुश्किल है। कृपया ये मोटे ग्रंथ फेंक दें, जिससे हम सब का जीवन बच सके।' ह्यू-एन-त्सांग असमंजस में आ गए। इतने में एक विद्यार्थी खड़ा हुआ और बोला- 'गुरुदेव, इन ग्रंथों को मत फेंकियेगा, क्योंकि ये ज्ञानामृत से परिपूर्ण हैं, जिनका उपयोग हमारे देशवासी कर सकेंगे। हम यदि स्वदेश न भी पहुंचे तो भी इससे किसी का ज्यादा नुकसान नहीं होने वाला है।' यह कहकर उसने अपने साथियों कि ओर देखा और सारे के सारे विद्यार्थी बिना हिचक नाव से कूद गये।

ज्ञान के महत्व को समझने वाले व्यक्ति से यही अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं से पूर्व समाज-हित की भावना को महत्त्व दे। साहित्य को ज्ञान की अंतःसलिला और साहित्यकार की लेखनी को ज्ञान-स्रोत होने का गौरव प्राप्त है। साहित्यकार बिना किसी स्वार्थ के अपने परिवेश और समय के सापेक्ष अपनी लेखनी को धार देता है सहर्ष कहता है- 'सारा लोहा उन लोगों का, अपनी केवल धार!' अब यहाँ प्रश्न यह खड़ा होता है कि यह 'उन लोगों'

हैं कौन? अगर वर्तमान संदर्भों में 'उन लोगों' की खोज करें तो निःसंदेह 'उन लोगों' में सबसे पहले वे रचनाकार आयेंगे जो व्यवस्था के साथ सामंजस्य बिठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति कर रहे होते हैं। सम्मान, पुरस्कार, बड़े पद और बड़े साहित्यकार होने का गौरव भी तो इन्हीं के हिस्से आता है!....सारा लोहा इन लोगों का...! लेखनी को सार्थकता प्रदान कर उसे 'धार' देने वाले रचनाकारों को तो अनेक बार 'साहित्यकार' के रूप में पहचान भी नहीं मिल पाती है, जीते जी तो कम ही उम्मीद होती है! अगर पहचान मिलती है तो अपने गाँव या शहर के दायरे से वह निकल नहीं पाती। 'उन लोगों' ने साहित्यिक समाज में अवधारणा सी विकसित कर दी है कि- साहित्य का सृजन और साधना करने के लिए 'दिल्ली' जैसे बड़े शहरों में निवास करना आवश्यक है। दिल्ली जैसे बड़ों शहरों में विकसित साहित्यिक परंपरा के लोग अगर ह्यू-एन-त्सांग के साथ होते तो तूफान आने पर वे पहले अपने गुरु ह्यू-एन-त्सांग को नदी में फेंकते, जिससे अपने देश में जाकर उन ग्रंथों के सृजन और संचयन का श्रेय वे स्वयं ले सकें। अगर नाव फिर भी संतुलित न होती तो ग्रंथों को फेंक देने में भी उन्हें कोई हिचक नहीं होती। समसामयिक हिंदी साहित्य में इसी विचारधारा से जुड़े लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। बिना किसी सार्थक कारण के मात्र विरोध के लिए विरोध करना, इनकी विचारधारा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

ऑनलाइन संस्करण के प्रथम अंक को आपके सामने प्रस्तुत करते हुए हर्ष भी हो रहा है, और आश्चर्य भी! हर्ष 'मधुराक्षर' के ऑनलाइन संस्करण आरंभ होने के साथ 'मधुराक्षर' के बारह वर्ष पूर्ण होने का, और आश्चर्य इसलिए कि इस बारह वर्ष की अवधि में एक-दो अंकों के अतिरिक्त हमें संयुक्तांक नहीं निकालने पड़ें। निःसंदेह आप सभी के सहयोग के बिना यह संभव नहीं था। आप सभी के सहयोग से ही आज 'मधुराक्षर' को न केवल राष्ट्रीय, अपितु अंतरराष्ट्रीय फलक पर पहचान मिली है। वर्तमान समय में भारत के सभी राज्यों में 'मधुराक्षर' के पाठक तो हैं ही, साथ ही कनाडा, लंदन, न्यूयार्क, मारीशस, स्पेन और चीन में भी 'मधुराक्षर' के सहृदयी पाठक हैं। उम्मीद है ये कारवां बढ़ता रहेगा...! आप सभी का सहयोग मिलता रहेगा...!

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

madhurakshar@gmail.com

कहानी

दाहिना गाल

प्लेटफार्म के बाहर भगदड़ मच गयी। एक अधेड़ औरत चिल्लाती हुई खड़ी थी- ''पकड़ो, पकड़ो। कोई पकड़ो। वह देखो मेरा झोला लिये भागा जा रहा है।''

''कौन, कौन। किधर गया। कैसा है।'' कई बुलंद आवाजें उभरीं। लोग दौड़-दौड़कर औरत के पास पहुँचने लगे। भीड़ लग गयी। सवाल होने लगे। झोले में कितना माल था। छीनने वाला किस रंग के कपड़े पहने था। उसके हाथ में चाकू था या पिस्तौल। तमाम तरह की ज्वलंत जिज्ञासाएँ। भगोड़े को दबोचने की रुचि के बजाय उस महिला से संवाद में रुचि अधिक दिखी। औरत झुँझला रही थी- ''कोई उसे पकड़ता क्यों नहीं। क्या सारे नामर्द हैं।''

एक व्यक्ति ने उसे झिड़क दिया - ''जान जोखिम में डाल कर कौन सहानुभूति दिखायेगा। कट्टा-वट्टा लिये होगा तो ठोंक देगा।''

औरत ने इशारा करते हुए विश्वास दिलाया- ''उसके पास कोई हथियार नहीं है। वही है, लाल शर्ट वाला। धीरे-धीरे जा रहा है टैक्सी अड्डा के पास।''

लोगों ने देखा। एक युवक कंधे पर लम्बा झोला टांगे शोरगुल से सहमा, बिना भागे चुपचाप खड़ा हो गया। इतने में भीड़ से कुछ मर्दों का साहस जाग्रत हो उठा। उन्होंने दौड़कर युवक को दबोच लिया। बिना किसी प्रतिरोध के वह युवक अब औरत के सामने भीड़ से घिरा निश्चिंत भाव से खड़ा था। जैसे उसने कोई अपराध न किया हो।

बदमाश पकड़ा गया। एक कौतूहल भरा शोर उठा। दर्षक दीर्घा में विजयोल्लास का महासागर लहराने लगा। किसिम-किसिम के लोग वाह-वाही लूटने के लिए आपस में ही तू-तू मैं-मैं करने लगे। जिज्ञासाओं की बाढ़ आ गयी। युवक, वृद्ध, कुली, रिक्शा-तांगा-टैक्सी वाले, साहब, बाबू, वकील। मुफ्त मनोरंजन के लती लोग सक्रिय हो गये। आखिर यह कौन हो सकता है। स्थानीय तो नहीं हो सकता है। ऐसे चोर उचक्के कच्चा काम करके पकड़े नहीं जाते। यह जरूर बाहरी है।

डॉ. बाल कृष्ण पाण्डेय
bkpandey1990@gmail.com

डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय, जाने माने शिक्षाविद एवं साहित्यकार हैं। विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों में लम्बी सेवा के उपरांत हाल ही में प्राचार्य के पद से सेवानिवृत्त होकर, साहित्य साधना कर रहें हैं। इनके कई प्रकाशन आ चुके हैं, साथ ही कई पुस्तकों का इन्होंने सम्पादन भी किया है। प्रस्तुत कहानी निम्न वर्ग में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक स्थितियों को रेखांकित करती है।

है। पुलिस की गैर-मौजूदगी सवाल खड़े करती है। जाहिर है कि स्थानीय उचक्के उनके परिचित होते हैं और धोखे से कभी पकड़े भी गये तो सबके के सामने दो-चार झापड़ रसीद करके थाने ले जाते हैं और डांट-डपटकर माल वापस करा देते हैं। यदि कोई अपरिचित और बाहरी उचक्का फंस गया तो उसे पकड़ कर थाने ले जाते हैं, मन भर निकियाते हैं फिर उसकी इच्छा पर छोड़ देते हैं। यदि वह इसी क्षेत्र में काम करने की इच्छा जाहिर करता है तो स्थानीय उचक्कों की देख-रेख में दैनिक सेवाकर्मी के रूप में भर्ती कर लेते हैं फिर विश्वस्त हो जाने पर उसकी भी माहवारी बाँध दी जाती है। सुरक्षाकर्मियों की अनुपस्थिति की आलोचना स्वाभाविक थी। किन्तु फजीहत होने से पहले ही दो पुलिसकर्मी बेंत लहराते भीड़ को चीरते हुए प्रकट हो गये और फौरन ही पूरे मामले को अपने हाथों में ले लिया।

युवक अब तक गंभीर और अविचलित खड़ा, भीड़ का मनोविज्ञान पढ़ रहा था। उसकी चुप्पी से सभी हैरान थे। औरत भी चुपचाप खड़ी थी। भीड़ दो खेमों में बंट गयी। कुछ युवक को घेरे हुए थी, किन्तु अधिकांश औरत को। भीड़ उतावली थी। दर्शक-दीर्घा में मनोरंजन के मुफ्तखोरों का धैर्य अब जवाब दे रहा था। एक ही रंगमंच पर दो दृश्यों वाले नाटक का संचालन विदूषक और सूत्रधार की तरह पूरी तरह पुलिस वाले संभाले हुए थे। काफी देर से चल रहे नाटक के कारण, प्रत्याशाएँ भी चरम पर थीं।

पुलिस वालों के दबाव बनाने पर युवक ने चुप्पी तोड़ी- ''यह झोला मेरा है।''

औरत अकड़कर बोली- ''झूठ बोलता है। झोला मेरा है।''

कंधे पर लटके झोले को जोर से दबोचते हुए युवक ने चुनौती दी- ''तेरा है ? तेरे बाप ने दिया है ? लेगी ? ले तो देखता हूँ। कोई अंधेरगर्दी मची है कि लोग मेरा ही सामान छीनकर दूसरे को सौंप देंगे। इसमें सब मेरी कमाई है।'' वह क्रोध और आक्रोश से कांपने लगा था।

किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। औरत चिल्लाती- ''झोला मेरा है। सब लोग सुन लो, मेरा है। इस कमीने ने, कितना जोर का तमाचा मेरे गाल पर मारा है।'' वह अँसुवाने लगी और पुलिस वाले से सट कर खड़ी हो गयी। झोले पर पकड़ ढीली पड़ते और बात उलझती हुई जानकर औरत रणनीति बदलने लगी। उसने फिर कहा- ''इस कमीने ने कितना जोर का तमाचा मारा है। गाल लाल हो गया है।'' तमाचे के दर्द की याद दिलाकर भावुक भीड़ को अपने पक्ष में करने की चालाकी से औरत बार-बार गाल सहलाने लगी। उसने भय का अभिनय करते हुए पुलिस वाले की हथेली पकड़ लिया- ''देख लो साहब, कितना जोर का मारा है। गाल लाल हो गया होगा।''

तमाचे के दर्द की याद दिलाकर भावुक भीड़ को अपने पक्ष में करने की चालाकी से औरत बार-बार गाल सहलाने लगी। उसने भय का अभिनय करते हुए पुलिस वाले की हथेली पकड़ लिया- ''देख लो साहब, कितना जोर का मारा है। गाल लाल हो गया होगा।''

इस अप्रत्याशित स्पर्श से पुलिस वाले का सोया हुआ कर्तव्य, विवेक सहसा जाग उठा। वह युवक के घुँघराले बाल पकड़ कर हिलाते हुए गालियाँ देने लगा।

धीरे-धीरे झोला पृष्ठभूमि में चला गया और ज्वलन्त मुद्दा गाल हो गया। अब बहस लाल हो गये गाल पर टिक गयी और सबकी नजरे भी। कुछ सहानुभूतिप्रिय सज्जन औरत के करीब जाकर तमाचे से लाल हो गया गाल निरखने का पुण्य लाभ उठाने लगे। हाई पावर बल्ब के चटक प्रकाश में यद्यपि काले कपोल पर थप्पड़ की एक भी लाल लकीर नहीं दिख रही थी। किन्तु लोग थे कि उसके समीप जा-जाकर एक भी ललाई ढूंढ लेने की जहमत उठाये जाते थे। मध्यम कद-काठी की छरहरी गोल चेहरे वाली औरत छापेदार साड़ी को घुटने तक सरकाकर

खुजलाती और पांव पटक कर गिलट के मोटे पायल को खनकाती हुई भावुक भीड़ की सहानुभूति लूटने लगी। जिसे घुँघराले बाल वाला सुदर्शन बलिष्ठ युवक तमाम सफाई देने पर भी प्राप्त कर पाने में असफल था। काफी देर तक मौका-मुआयना कर लेने के बाद पुलिस वाला गाल पर हाथ फेरता हुआ बोला- ''सही तो कह रही है बेचारी। इसका दाहिना गाल कितना लाल हो गया है।''

भीड़ में से गवाही देती हुई कुछ आवाजें आयीं- ''हाँ-हाँ, लाल हो गया है।''

औरत किसी अनहोनी आशंका से चौकन्ना होती हुई दूर हट गयी और बोली- ''नहीं साहब; दाहिना नहीं, बायाँ गाल।''

पुलिस वाला कुछ झेंपा, किन्तु दूर खड़े दूसरे पुलिस वाले ने बात संभाल ली- ''सही तो कह रही है, बायाँ गाल है। देखो दीवान जी, बायाँ ही है। यहाँ से साफ-साफ दिखायी दे रहा है।''

ज्यादातर लोगों को दूर खड़े पुलिस वाले की दिव्य गिद्ध दृष्टि पर आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने भी हामी भरी। किन्तु पहले पुलिस वाले के साथ दाहिने गाल के पक्ष में गवाही दे चुके सज्जन कुछ मायूस दिखे।

युवक से रहा न गया, बोल पड़ा- ''ये झूठ बोलती है। बायें गाल पर जोर का तमाचा कैसे पड़ सकता है।''

इस तर्क का भीड़ में से मुट्ठी भर तटस्थ लोगों ने समर्थन किया। युवक के चेहरे पर आंशिक विजय की मुस्कान छहर गयी। साहस लौटने लगा। बोला- ''कैसी फालतू बात हो रही है साहब। औरत का गाल कहीं तमाचा मारने के लिए बना होता है ? औरत तो आदमी का बायाँ अंग होती है। अपने ही बायें अंग पर वह कैसे चोट कर सकता है?''

धीरे-धीरे झोला पृष्ठभूमि में चला गया और ज्वलन्त मुद्दा गाल हो गया। अब बहस लाल हो गये गाल पर टिक गयी और सबकी नजरे भी। कुछ सहानुभूतिप्रिय सज्जन औरत के करीब जाकर तमाचे से लाल हो गया गाल निरखने का पुण्य लाभ उठाने लगे। हाई पावर बल्ब के चटक प्रकाश में यद्यपि काले कपोल पर थप्पड़ की एक भी लाल लकीर नहीं दिख रही थी।

''क्या तू इसका दाहिना अंग है ?'' -किसी ने तपाक से पूछा।

''और नहीं तो क्या ?'' -उसने तपाक से उत्तर दिया।

''यह मेरा कोई नहीं है। यह कमीना है।'' -औरत ने खंडन किया।

"बोलता क्यों नहीं ? कौन है तू इसका ?" -पुलिस वाले ने युवक को झकझोरा।

इस बार युवक चुपचाप नहीं रह सका- ''मैं इसका सब कुछ हूँ। मेरे साथ रहती है। दस साल हो गये हैं।''

एक सज्जन कुछ समझते हुए बोल पड़े- ''अच्छा, ये तेरी बीबी है।''

युवक बेझिझक बोला- ''बीबी ? क्या शादी होने से ही कोई औरत बीबी हो जाती है ? इस जमाने में भी आप कैसी बात कह रहे हैं साहब जी।''

किसी ने समर्थन किया-''ठीक कह रहा है। अब तो बड़े शहरों में 'लिव इन' की शुरुआत हो गयी है। दोनों पति-पत्नी की तरह साथ रहते होंगे।''

औरत ने फिर खंडन किया- ''यह मेरा कोई नहीं।''

इस बार पुलिस वालों ने कडाई से तफ्तीश करनी शुरू की। प्रश्नों की बौछार से युवक थोडा़ डगमगाया- ''कहाँ रहता है ?"

"नासिक में।"

"काम कहाँ करता है ?"

"प्रकाश रेस्टोरेंट। यहीं इलाहाबाद में।"

"नासिक में कोई रेस्टोरेंट नहीं मिला ?"

"मिलता क्यों नहीं ? पर अपने शहर में जूठे बर्तन कैसे धोता। यहाँ चला आया।"

"यह औरत कहाँ रहती है ?"

"वहीं पर। मेरे घर में। दस साल हो गये। दस साल से। चार बार भाग चुकी है। खोज कर फिर लाता हूँ। जब तक रुपया-पैसा रहता है, मौज करती है। समय से पैसा नहीं भेज पाता तो इसे भी जरूर तकलीफ होती होगी। अपनी सारी कमाई इसके लिए बर्बाद कर दिया। ऊपर से कैसा कह रही है कि मेरा कोई रिश्ता ही नहीं है।"

औरत ने भांप लिया। ऊँट किसी भी करवट बैठ सकता था। सहानुभूति की राह कमजोर पड़ती, इसके पहले ही उसने दूसरा दांव खेला। रोती हुई बोली- ''मेरा झोला दिलवा दो साहब। मैं अपने आदमी के पास जा रही हूँ। इसने मुझे कितना जोर का तमाचा मारा था।'' औरत ने बड़ी चालाकी से झोला और गाल दोनों मामलों को एक साथ आगे बढ़ा दिया। दो-दो मोर्चे एक साथ खुल गये। किन्तु इस तीसरे खुलासे ने सबको चौंका दिया -''आदमी के पास ? कहाँ हुई है तेरी शादी?''

''यहीं इलाहाबाद में। कीटगंज में रहता है। मास्टर है। छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाता है। उसके पास मेरा बारह साल का बच्चा भी है।''

"फिर तू उसको छोड़कर इसके साथ नासिक में क्यों रहती है?"

''उसको छोड़ा कहाँ है साहब। वहीं तो रहती थी। यह आदमी होटल में काम करता था। मेरे आदमी के पास उठता-बैठता था। पीता-पिलाता था। तभी जान-पहचान हो गयी। एक दिन मुझे घुमाने के बहाने ले गया। धोखे में चली गयी।''

युवक आँखें तरेर रहा था- ''अब तू झूठ बोल रही है। अरे, भगवान को डर। तू मर्जी से मेरे साथ गयी थी। कहती थी कि मेरा आदमी ट्यूशन के पैसे से न तो अच्छा खिला-पहना पाता है और न ही शौक-सिंगार करा पाता है। तू फिल्म नगरी देखने और वहां काम करने की जिद करने लगी थी। मेरे साथ भाग आई। कोई काम-धंधा नहीं मिला तो मैं होटल में थाली साफ करके तुझे आराम की जिंदगी देता रहा। तेरा शौक सिंगार तो कोई करोड़पति भी पूरा नहीं कर सकता। फिर भी कहती है कि मुझसे कोई रिश्ता नहीं।'' युवक की आँखे छलछला उठीं थी। वह क्रोध तथा पश्चाताप से काँप रहा था।

''हट बे, बेईमान, कमीने, नकमहराम। जिसके साथ इतने दिन मौज-मस्ती की, उसे एक झोला तक नहीं दे सकता। इसी के लिए यह अपने मरद से बेवफाई कर तेरे साथ भाग गयी थी।''

मामला काफी उलझ गया था। किसी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था तभी कोई ट्रेन आई। भीड़ में हलचल हुई। कुली, रिक्शा-टैक्सी वाले स्टेशन की तरफ भागे। बाकी तमाम राहगीर जमे रहे। औरत फिर अँसुवाने लगी- ''इसने कितना जोर का तमाचा....।''

पुलिस वाले ने युवक को फिर धकियाया- ''क्यों मारा बे। औरत को पीटना जुर्म है। बिना जमानत वाली धारा लग जाती है।''

युवक हाथ जोड़कर माफी मांगने के भाव से बोला - ''कह तो दिया साहब, मारा नहीं। सिर्फ डाँट पिलायी। इसे छोड़कर पैसा कमाने आ रहा था। इलाहाबाद चलने की जिद करने लगी। बोला था पैसे भेज दूंगा तो आ जाना। नहीं मानी। पीछे-पीछे यहाँ चली आयी। बेटिकस। कहीं पकड़ी जाती और जेल हो जाती, मैं तो कहीं का नहीं रह जाता। कहाँ ढूंढता फिरता इसे।''

औरत ललकारती हुई आगे बढ़ी- ''बेटिकस चली आयी तो कौन सा गुनाह हो गया। इतने सारे लोग रोज बेटिकस आते जाते हैं। स्कूली लड़के, दफ्तर वाले, पुलिस सिपाही, नेता और उनके साथ झुंड के झुंड लोग। न कोई पकड़ा जाता है, न जेल ही जाता है। सुन लो सब लोग। इत्ती सी बात के लिए इसने मारा। और झोला छीन लिया।''

पुलिस वाले ने युवक के बाल खींचते हुए दो तमाचे जड़ दिया और झोला छीन कर औरत को दे दिया। झोला पाकर उसने इस तरह पेट में दबा लिया

जैसे बंदरिया अपने बच्चे को चिपकाती है। युवक सांप की तरह फुंफकार उठा- ''इसमें सामान सब मेरा है। मैंने रात-दिन मेहनत करके कमाया है। सारा रुपया-पैसा लेकर यह फूट जायेगी।''

एक व्यक्ति ने झल्लाते हुए उसे डांट दिया- ''हट बे, बेईमान, कमीने, नकमहराम। जिसके साथ इतने दिन मौज-मस्ती की, उसे एक झोला तक नहीं दे सकता। इसी के लिए यह अपने मरद से बेवफाई कर तेरे साथ भाग गयी थी।''

युवक ने ताली पीटते हुए उस व्यक्ति का परिहास उड़ाया - ''वाह साहब वाह। क्या न्याय किया है आपने। आप भी कभी न कभी किसी न किसी से हँसे बोले होंगे। उससे सच्ची-झूठी कसमें खायी होंगी। उसके नाम अपनी सारी सम्पत्ति तो नहीं लिख दी होगी। यह दुनिया है साहब। यहाँ कौन इधर-उधर ताक-झाँक नहीं करता ? प्रेम-पिरीत नहीं करता ? कुछ चोरी-छिपे करते हैं, कुछ डंके की चोट पर। उन अभागों की बात अलग है। जो कुछ कर भी नहीं पाते और दूसरों को बदनाम भी करते फिरते हैं। यहाँ सबको सबकी असलियत पता है। कौन किसका क्या बिगाड़ लेता है। और हाँ साहब, आपसी रजामंदी से बना रिश्ता पाप नहीं कहलाता।''

उस व्यक्ति को बुरा नहीं लगा, मुस्कुराकर बोला- ''ये ससुरा फिलासफर भी है।''

एक पुलिस वाला दूसरे से नाराज होकर बोला- ''ये ऐसे नहीं मानेंगे दीवान जी। थाने ले चलो।''

औरत ने प्रतिरोध किया - ''नहीं साहब, थाने तो हरगिज नहीं जाऊँगी।''

"क्यों ?"

"डर लगता है।"

"किससे ?"

"पुलिस वालों की नीयत से।"

लोग हँसने लगे, किंतु पुलिस वाला झेंपा नहीं। उसने एक भरपूर तमाचा औरत के गाल पर जड़ दिया। वह लड़खड़ाती हुई कई कदम पीछे चली गयी।

युवक ने दौड़कर उसे संभाला और चिल्ला पड़ा - ''ठीक नहीं होगा साहब। औरत जात पर हाथ उठाना जुर्म है। यह बात आपको भी पता है। औरत की बेइज्जती बर्दाश्त नहीं करूँगा। चाहे बोटी-बोटी कट जाये।'' वह गुस्से से काँप रहा था। भीड़ में सन्नाटा छा गया। भीड़ में से कुछ ने इसका विरोध किया। पुलिस वाले को शायद गलती का एहसास हुआ। वह बचाव का रास्ता खोजने लगा।

औरत अपना दाहिना गाल थाम कर चीत्कार करने लगी- ''दुनिया के सारे मरद एक जैसे होते हैं। औरत को चोट पहुँचाकर अपनी मर्दानगी दिखाते हैं।''

एक संभ्रान्त वृद्धा उस औरत के पास जाकर आँसू पोछने लगी, बोली- ''इस तरह नहीं रूठते बेटी। अपना आदमी प्यार दुलार करेगा, तो गुस्सा भी करेगा। प्यार तकरार सब चलती है। आपस में मार-पीट हो जायेगी तो वह सह लेगी। लेकिन भरी बाजार कोई पराया मर्द इस तरह तमाचा मारेगा, बेइज्जती करेगा, तो वह जीते जी मर जायेगी। आज तेरा आदमी होता दाहिना अंग होता, इस तरह दर-दर की ठोकर न खाती। कोई हाथ उठाने की हिम्मत न करता।''

भीड़ धीरे-धीरे छंटने लगी थी। मौके का फायदा उठाकर पुलिस वाले न जाने कब खिसक लिये थे। कुछ दूरी पर अपराधी की तरह सिर नीचे किये युवक खड़ा था। शर्म, संकोच, पश्चाताप, क्रोध और आक्रोश से औरत का चेहरा तमतमाया हुआ था। अब उसके दोनों गाल लाल हो रहे थे। पर दाहिना गाल, जिस पर पुलिस वाले का तमाचा पड़ा था; अधिक लाल हो चुका था। सचमुच!

जिंदगी में जो कुछ है,
जो भी है,
सहर्ष स्वीकारा है;
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है,
वह तुम्हें प्यारा है।

-मुक्तिबोध

कहानी

धुंध के उस पार

देवी नागरानी

dnangrani@gmail.com

सन् 1941 ई. में कराची सिंध, तत्कालीन भारत, में जन्मीं देवी नागरानी देश की अँतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं। हिंदी, अंग्रेजी और सिंधी भाषाओं में समान अधिकार और सिद्धहस्त देवी नागरानी को विभिन्न राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय सँस्थाओं द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। इस कहानी में, सास-बहू के सम्बन्ध और उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द को रेखांकती करते हुए, एक सकारात्मक समाधान प्रस्तुत किया गया है।

सन्नाटे की उस शिला पर शैली खुद हैरान, ठगी हुई खड़ी है, जहाँ से वह सिर्फ़ शून्य को देख सकती थी। यह वही जगह थी- उसका अपना ससुराल, जहाँ उसने भूतकाल की ज़मीन पर भविष्य के बीज बोए थे। वही भविष्य उसका 'आज' बन कर खड़ा है और वह खुद सोच की गहराइयों में गुम सुम, अपने अतीत की परछाइयों से आती उन सिसकती आवाज़ों को सुन रही है।

'बहू आओ यहाँ मेरे पास आकर बैठो।' दशहरे के अवसर पर पंडाल की उस भीड़ में अपने पास कुछ जगह बनाते हुए रोचना ने अपनी बहू शैली को आवाज़ दी।

'मम्मी मैं यहीं पीछे खड़ी हूँ, ये भी मेरे साथ हैं।' कहकर शैली आगे बढ़ गयी, और तन्हाइयों के साये में घिरी रोचना बहू को जाते हुए देखती रही। न जाने क्यों उसे आभास होने लगा कि वह जब भी अपनी बहू के पास जाने की कोशिश करती है, या अपनाइत के दायरे में उसे लाने की कोशिश करती, शैली उतने ही वेग से रोचना से दूर चली जाती। यादों की उन खाइयों में उसके साथ रह जाती सिर्फ़ कुछ परछाइयां जो एकान्त में उसे कचोटती। उस नाज़ुक रिश्ते की चुभन को कम करने के लिए वह कुछ अनदेखे आँसू बहा लेती। यह दर्द भी अजीब है, अपने इज़हार के ज़रिये ढूँढ ही लेता है। वरना एकांत के इस कोहरे की घुटन में जीना मुहाल होता।

'माँ हम 'माल' जा रहे है, आप भी हमारे साथ चलिए !' सुनते ही रोचना के दिल की दहलीज़ पर आशा के दिए झिलमिलाने लगे। अपने पास लाने का बहू का यह प्रयास उसे भला लगा। हर्षो-उल्लास की भावनाएँ मन ही मन में लिए वह बहू-बेटे के साथ माल पहुंची। पर वहाँ पहुँचकर शैली एक ट्रॉली लेकर न जाने किस भूल-भुलैया में खो गई और साथ देने के लिये बेटा रोहित भी चला गया। बस एक बार फिर उस शोर में वह भीड़ का हिस्सा बनकर रह गयी। यह पहली बार नहीं हुआ था, पहले भी कई बार वे उसे यूं भीड़ में अकेला छोड़कर घंटों ग़ायब हो जाते। इस बार-बार के छलावे से उचाट सी होकर रोचना उनके आने के इंतज़ार में एक बेंच पर बैठ जाती। उस दिन जब घर लौटी तो तन के साथ-साथ उसका मन भी बीमार सा हो गया।

मन भी कब किसी का खाली बैठा है, साथ देने के लिये सोचों के खज़ाने लुटा देता है। रोचना का मस्तिष्क भी तेज़ रफ्तार से उसके चोट खाये हुए मन को घेरे हुए था। उसे पता ही नहीं पड़ा कि वह कब सोचों की सेज पर सो गई। उठी तो शफ़ाक़ सोच उसके साथ थी। अब उसे बाहर जाने की बजाय घर की तन्हाई में पड़े रहना ज़्यादा गवारा लगा। अब जब कभी भी बेटा आकर साथ चलने के लिये कहता तो वह कोई न कोई बहाना बताकर घर में रह जाती। कम के कम अनचाही चोट के आघात से तो बची रहती।

'माँ कभी हमारे साथ भी बाहर चला करो, हमेशा घर में बैठी रहती हो।' एक दिन बेटे ने आकर कहा। जवाब में रोचना का फिर वही एक नया सबब होता।

अब जाकर शैली को अहसास हुआ कि उसकी सास जो उसकी हाँ में हाँ मिलाने के लिए हमेशा आतुर रहती थी, जाने किस कारण बहुत कहने पर भी उनके साथ कहीं आती जाती नहीं। एक दिन शैली ख़ुद सास के पास जाकर उनको साथ चलने के लिए अनुरोध करने लगी। लेकिन रोचना का मन अब एकांत में ठहराव पाने लगा था। अब मन की भावनाओं में हलचल के उतार-चढ़ाव से किनारा करने की आदी होने लगी थी। इसलिए शैली की ओर देखते हुए शांत स्वर में कहने लगी- 'नहीं बेटा, तुम और राहुल दोनों हो आओ। मैं तुम दोनो के पीछे चलते-चलते बहुत थक जाती हूँ।' उसने सूनी आँखों से अपने बेटे रोहित की ओर निहारते हुए कहा, जो उसी वक़्त आकार शैली के पीछे खड़ा हुआ था। रोचना को लगा जैसे वह अपने आप से बात करती रही, ख़ुद कहती रही, ख़ुद सुनती रही। 'माँ चलिये ना!' अब रोहित ने शैली के सुर में ने सुर मिलाया।

'बेटे न जाने क्यूँ इस चारदीवारी में मुझे सुकून-सा मिलता है।' और अपनी सोच की भीड़ में गुमसुम रोचना अपने आप सिमटती चली गई। शायद वह बखूबी जान गई थी कि बाहर की भीड़ में अकेली पड़ जाने से घर में अकेला रहना बेहतर है।

अनकहे शब्दों की गूँज शैली के दिल पर दस्तक देती रही। वह इतनी भी नासमझ नहीं थी, जो बात की गहराई में लिपटे नंगे सच को न जान पाती। अपने आचरण की उपज के बोए बीजों के कोंपल देख रही थी, अपने नादान रवैये की उपज को देख रही थी, जो लहलहाने के बजाय सूखकर, मुरझाकर, कुम्हला रही थी। यही नागफनियों की तरह उग रहे थे उसकी आँखों में, उसके जेहन में। अब वह जब कभी अपने पति और नन्हें बच्चे के साथ शॉपिंग माल में जाती, तो उसका मन उसे इस क़दर कचोटता कि वह उसके डंक से खुद को बचा न पाती। अपने-पराए के तानों से बुने हुए जाल में वह फंस गई थी। उसे आभास होने लगा जैसे उसकी सास रोचना अब उसकी आवाज़ सुनती ही नहीं या सुनना नहीं चाहती।

एक दिन रोचना ने एक थैले में कपड़े और ज़रूरत का सामान रखते हुए शैली से कहा- 'बहू, आज मैं अपनी सहेली कान्ता के घर कीर्तन के लिए जा रही हूँ, दो दिन उसके पास रहकर लौटूँगी।'

शैली ने खाली नज़रों से देखा और कुछ कहती उससे पहले रोचना ने अपने कपड़ों का थैला उठाया और थके हारे क़दमो से घर के बाहर जाने लगी। शैली को लगा जैसे वह अपना भविष्य दरवाज़े से बाहर जाता हुआ देख रही हो।

'माँ रुकिए, मैं आपको कार में छोड़कर आती हूँ।' अधखुले अधर कहकर भी न कह पाये। उसकी धीमे आवाज़ रोचना के कानों तक न पहुँच पाई। उस एकाकी दुख ने उसके कलेजे में खला पैदा कर दी थी जहां घुटन के सिवा कुछ न था, और उस घुटन का धुआँ धीरे-धीरे उसके अस्तित्व को घेरता रहा। धुंध के इस चक्रव्यूह को वह तोड़ना चाहती थी। पर रोचना ने अपने आपको इस क़दर शांत और तन्हा माहौल में ढाल लिया था कि उसे परिवार की हलचल में सन्नाटा लगने लगा। उसे तन्हाई से लगाव हो गया था और वह अकेले रहने के मौक़े की तलाश में रहती। बहू से दूर, अपने बेटे से भी दूर। जहाँ उसकी आँखे कभी उनमें अपनेपन की आस न टटोले। वही अपने जो उसे कहीं भी किसी भी जगह

अकेला छोड़कर चले जाने की हिमाकत कर सकते हैं।

यह सिलसिला कई महीने तक चलता रहा। रोचना आए दिन अकेली कभी कीर्तन में चली जाती, कभी बाहर बगीचे में घंटों जा बैठती और कुदरत की सुंदरता की अनुपम छवि के साथ गुफ्तगू करती। अब शैली को माँ का इस तरह घर में होकर भी न होना खलने लगा। उसकी गैर-मौजूदगी और भी ज़्यादा खलने लगी। उसे अहसास हुआ कि वह सास को वह कभी भी अपनी माँ समझ नहीं पाई। यही सोच शायद दूरिया बढ़ाने में मददगार हुई थीं। हालांकि रोचना हमेशा घर के काम में, रसोई में उसका हाथ बंटाया करती। शैली की गैर-मौजूदगी में खाना बनाकर रखती थी। काम वह अब भी करती रही और फिर हो जाने पर अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती। घर में इन्सान हो और न हो, कोई आस-पास हो और न हो, तो कैसा महसूस होता है ? शैली को इस बात का पूरी तरह आभास हुआ। अपनी नदानियों के नतीजा सामने सर उठाकर उसका मुंह चिढ़ा रहा था। एक दिन अचानक वह अपनी सास रोचना के कमरे में चले गई, जो कहीं कीर्तन पर जाने की तैयारी में लगी हुई थी।

'माँ, आज मैं भी आप के साथ कीर्तन में चलूंगी।'

रोचना उसकी नम आवाज़ सुनकर चौंकी। सर उठाकर ऊपर देखा, शैली का पूरा अस्तित्व भीगा-भीगा सा था। वह चुनरी के कोने को लपेटते हुए जवाब की प्रतीक्षा में खड़ी रही। कुछ सोचकर रोचना ने कहा- 'अच्छा बहू मुन्ने के कपड़े मुझे ला दो, मैं उसे तैयार करती हूँ। तुम जाकर जल्दी तैयार हो जाओ। समय हो गया है।'

कीर्तन स्थान पर पहुंच कर रोचना ने एक उचित स्थान ग्रहण किया तो बिल्कुल पास में ही शैली भी बैठ गयी। अपने बेटे को सास के पास बिठाने की कोशिश की तो रोचना ने झट से पोते को बाहों में लेकर अपनी गोद में बिठा लिया। एक अनकही, अनसुलझी उलझन ने जैसे निःशब्दता में खुशगवार समाधान पा लिया!

फार्म – 4

समाचार पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान : **जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601**
2. प्रकाशन की आवर्तिता : **त्रैमासिक**
3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम : **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
4. राष्ट्रीयता : **भारतीय**
5. सम्पादक का नाम : **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
   राष्ट्रीयता : **भारतीय**
   पूरा पता : **जिला कारागार के पीछे, 9 ब, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601**
6. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता : **स्वत्वाधिकारी बृजेन्द्र अग्निहोत्री**

मैं **बृजेन्द्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।

–बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

क्रेश

‘आखिर ऐसा कब तक चलेगा सुधीर ? हमारी शादी को दस साल हो गये हैं सारी जिम्मेदारियां मैं ही क्यो ढोंऊ! तुम्हारा भी तो कोई फर्ज है! फिर ढोने की बात नहीं... मेरी अपनी भी जिन्दगी है, इच्छाएं हैं। इतना पढ़-लिखकर भी मैंने क्या किया है! महज आयागिरी ही तो की है! तुम्हारे कहने पर मैंने अच्छी-खासी नौकरी को लात मार दी थी। मुझे भी लगा था, तुम सही कह रहे हो... सच में मुझे कुछ समय पूरी तरह फैमली में इन्वाल्व हो जाना चाहिए। हैल्दी रिलेशन-शिप के लिए यह जरूरी है। तब सब कुछ ठीक था, विशेष खर्चे नहीं थे। लेकिन अब... पिछली आठ सालों से पापा रिटायर्ड लाईफ जी रहे हैं और मम्मा भी तो सात साल से! पापा को हाई ब्लड-प्रेशर की शिकायत है, फिर भी अपने सब काम खुद कर लेते हैं.. पर उनकी भी तो उम्र हो गयी है। मम्मा तो बिल्कुल कुछ नहीं कर पाती है। बस्स, जैसे-तैसे नहा लेती है... उसमें भी बार-बार देखना पड़ता है, नहाते-नहाते भी दमे का अटैक आता है.... डायबिटीज आर्थडटिस सो अलग, ऊपर से वीकनेस... फिर बच्चे, उनके स्कूल के खर्चे, उनके फ्यूचर की चिन्ता... दिन भर घर का माहौल.....! अब मैं नहीं रह सकती, ऐसा कुछ दिन और चला तो पागल हो जाऊंगी। बस्स... अब नहीं,...मैं सर्विस करना चाहती हूं, ताकि खुले में सांस ले सकूं और इकोनोमिकली भी हाथ खुला हो सके, तो गाड़ी भी पटरी पर रहे।’

‘सो तो ठीक है शिखा, पर अब मम्मा-पापा को घर में अकेले नहीं छोड़ा जा सकता! तुम तो जानती ही हो, उन्हें अकेले छोड़ने जैसी स्थिति नहीं है। बाई-द-वे खुदा न खास्ता, ईश्वर न करे, पर कभी कुछ हो गया तो....फिर बच्चों का....?’

‘बच्चों की फिक्र नहीं है, उनकी स्कूल का और मेरी कालेज का टाईम लगभग एक सा है। मेरे साथ ही स्कूल के लिए निकल जायेंगे। शाम को मैं उनसे पहले घर पहुंचूंगी। तुम्हें तो मेरा पहले वाला कॉलेज पता ही है, उसी में वैकेन्सी है। मुझे जॉब मिल भी गया है, बस ज्वाईन करने भर की देर है।’

‘अच्छा... तुमने मुझसे पूछा तक नहीं.... सर्विस भी पक्की कर ली। जब तुमने अपनी मनमानी कर ली है, तो मुझसे बात करने की जरूरत कहां आ पड़ी।’

नहीं-नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने बात की है, हां नहीं की है। उनकी तरफ से पक्का है। पहले तो मुझे पता ही नहीं था। दस दिन पहले सब्जी मार्केट में शीला मिली थी, उसने बताया कि वैकेन्सी है तुम अप्लाई क्यों नहीं करती। उन्हें टीचर की जरूरत है। क्लासें शुरू हो गयी हैं, लेकिन दो-तीन टीचर नहीं हैं... मिल जायेंगी। फिर तुम तो वहां

डॉ. कृष्णा खत्री
krishna1951khatri@gmail.com

प्रख्यात कहानीकार कृष्णा खत्री ने इस कहानी में सदियों से चले आ रहे वैचारिक पीढ़ी-अंतराल को प्रस्तुत करते हुए सामाजिक विसंगतियों द्वारा पढ़े-लिखे समाज में विकसित विचारधारा पर प्रहार करते हुए अद्यतन समाज के यथार्थ से परिचित कराने के सफल प्रयास किया है।

दो साल सर्विस कर चुकी हो। मैं डायरेक्ट चली गयी, प्रिंसिपल तो मिलते ही खुश हो गये। मेरे कुछ कहे बिना बोले वापस आना चाहती हो, वैकेन्सी है, आ जाओ, तुम्हारे जैसे ही टीचर की जरूरत है। कल से ही आ जाओ।'

'मैं यह सब नहीं जानता। बस्स...सर्विस नहीं करोगी, मैंने कह दिया तो कह दिया।'

'सुधीर यह तुम्हारा ईगो बोल रहा है....।'

'शटअप....!' कहते हुए सुधीर तिलमिला उठा और पांव पटकते हुए बाथरूम चला गया। शिखा भी गुस्से में भुनभुनाती किचन में चली गयी। खाना बनाया, बच्चों खिलाकर वक्त पे सुलाना था। मम्मा-पापा को डिनर साढ़े आठ बजे तक देना पड़ता है, शुरू से उनकी आदत रही है। हालांकि शिखा सुधीर अपने कमरे में बात कर रहे थे, फिर भी आधी-अधूरी भनक मम्मा-पापा के कानों में पड़ ही गयी। पति-पत्नी दोनों ने एक दूसरे की आंखों में कातर दृष्टि से देखा... बहुत कुछ कह दिया, मगर जुबां चुप रही।

खाने की टेबल पे सुधीर और बच्चे बैठे थे। मम्मा-पापा अपने कमरे में ही थे, उनका खाना उनके कमरे में ही पहुंचा दिया जाता है। कई बार खाते-खाते भी मम्मा का दमा उखड़ जाता था। औरों को डिस्टर्ब होता था... शिखा खाना बीच में छोड़ देती। देखा, महसूसा.... सबके साथ टेबल पे खाना छोड़ दिया। पिछले दो सालों से दोनों पति-पत्नी अपने कमरे में ही खाते थे। आज भी खाना उनके कमरे में पहुंचाया गया। सुधीर देकर आया, अक्सर शिखा दे आती है। मगर आज बड़बड़ाते हुए शिखा ने कह दिया, 'तुम्हारे मां-बाप का ठेका मैंने नहीं लिया है, खुद करो। मुझसे नहीं होता रोज-रोज।' अच्छा हुआ मात्र बड़बड़ाहट थी, सो मम्मा-पापा ने नहीं सुना। बिना कुछ बहस किये सुधीर खाना दे आया, साथ ही उनकी दवा वगैरह भी उनके पास रख दी। बोला, 'खाना खाकर अपनी दवा ले लेना।' और बिना जवाब का इन्तजार किए निकल गया। बच्चे खा रहे थे, उसकी प्लेट भी रखी थी। बिना कुछ कहे उसने भी खाना शुरू किया। खा-पीकर, किचन से निपटकर बच्चों को सुलाने ले गयी। उनके सोने के बाद स्कूल यूनीफार्म प्रेस की, हालांकि प्रेस के कपड़े धोबी को जाते थे, यूनीफार्म घर पर खुद ही करती थी। धोबी का ठिकाना नहीं था, कभी देर भी कर देता था इसलिए यूनीफार्म देना बन्द ही कर दिया। सारे कामों से फायरिंग होकर वो भी सोने चली गयी। उधर सुधीर अभी तक जाग रहा था, जब कि रोज वह इत्मीनान से सो जाता था। आज उसे कमरे में अजीब सी घुटन हो रही थी। वैसे तो तना-तनी होती रहती थी, महीने में एकाध बार... लेकिन चलता था सब। कोई खास नहीं बस..शिखा की कुछ शिकायतें रहती थी सुधीर से-जैसे, तुम मेरे लिए कुछ नहीं करते, तुम्हें मेरी जरा भी फिक्र नहीं है, कभी पिक्चर तक नहीं ले जाते, शापिंग को भी साथ नहीं चलते, नहीं तो औरों को देखो.... इत्यादि बातें। लेकिन आज का युद्ध तो निर्णायक युद्ध था, इसलिए सुधीर परेशान और पेशोपश में था। आखिर इस समस्या को सुलझाये कैसे.... ? शिखा भी अपनी जगह सही है, वह कुछ गलत नहीं कह रही है। उसका अपना भी तो कुछ है, आखिर करूं तो क्या करूं इस सवाल ने उसकी नीद उड़ा ही दी ।

शिखा को भी लगा कि शायद उसने अति कर दी। उसे भी इस तरह नहीं कहना चाहिये था। बेचारे, दिन भर तो आफिस में खटते हैं, ऊपर से घर की किट-किट। मैं भी ना... शान्ति से बात नहीं कर सकती थी। उसे भी ग्लानि हो रही थी। सो उसने सुधीर से पहले 'सारी' कहा और सीने से लग गयी। इस अप्रत्याशित से सुधीर स्तब्ध रह गया। कुछ बोल ही नहीं सका, क्योंकि हर बार हथियार उसे ही डालने पडते थे, तब जाकर माहौल हल्का फुल्का हो पाता था। कुछ अपने में आया तो उसने शिखा के बालों को सहलाते हुए कहा, 'मी टू'। आंसू बहाते पति-पत्नी जाने कब नींद की आगोश में चले गये। सुबह अपनी वही रूटीन... आफिस गया, लेकिन उसका मन ही नहीं लग रहा था। चेहरे पे भी परेशानी झलक रही थी। लंच टाईम में वो और कुलकर्णी साथ ही लंच करते थे। इस दरम्यान सुधीर काफी मस्ती में रहता था, जोक्स वगैरह मारता रहता था। लेकिन आज इस तरह चुप-चुप देखकर कुलकर्णी को बड़ा अजीब लगा। उसने उसकी इस चुप्पी का कारण पूछा।

अक्सर अपनी परेशानी को दोनों शेयर करते थे। आफिस में उसकी दोस्ती के चर्चे थे। सुधीर ने कल की सारी बातें कुलकर्णी को बता दी। सुनकर कुलकर्णी बोला- 'अरे यार! इत्ती सी बात के लिए परेशान हो रहे हो.. कितने ओल्ड एज होम हैं।'

'क्या बात करते हो, मम्मा-पापा को ओल्ड एज होम में रखूँ... यह कोई समाधान नहीं है। फिर इस उम्र में उनको बेघर...विस्थापित...नहीं-नहीं। मैं ऐसा... नहीं....नहीं....!'

'अमा यार, सुनो तो सही, यह परमानेन्ट रहने वाला नहीं, बल्कि दिन को उन्हें वहां छोड़ देना वापस घर जाते हुए ले जाना। फिर उनका माहौल भी तो बदलेगा, उनकी उम्र के लोग बोलने-बतियाने को मिलेंगे। तू राधा मैडम से पूछ के देख ले...।'

'राधा मैडम...?'

''हां, हां, राधा मैडम वहां की ट्रस्टी हैं।'

वह राधा मैडम से मिलके तो पूरी तरह इम्प्रेस हो गया। मानों सारा बोझ उतर गया हो। एकदम खुद को हल्का-हल्का महसूस कर रहा था। लगा अभी का अभी घर जाय और शिखा को बताए, वो सुनकर ही उछल पड़ेगी। लेकिन काम काफी था और अर्जेट भी... सो मन मार के रह गया, नहीं जा पाया, अपने समय से ही गया। सच में शिखा ने सुना, तो उसका दिल बल्लियां उछलने लगा। अब मम्मी-पापा को कन्वेन्स करना था। शाम की चाय आज उनके रूम में ले गये, साथ में उनकी पसन्द के वेज-सैंडविच भी बनाये थे। मम्मी-पापा को यह सब देखकर कुछ अटपटा लगा और खुशी भी हुयी। बस मिले-जुले अहसास में चाय नाश्ता किया। पर पापा समझ गये थे कि जरूर कोई बात है। वे ही सुधीर से पूछ लेते हैं, 'कहो कुछ कहना चाहते हो...?' सुधीर ने बड़ी मुश्किल से हिम्मत जुटाई बोला, 'पापा, आप तो जानते ही हैं मंहगाई दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है साथ में खर्चे भी पर आदमी नहीं। ऐसा विचार है कि शिखा को भी जॉब कर लेना चाहिए, आखिर उसकी पढ़ाई किस काम आयेगी। आप क्या कहते है?'

'बिल्कुल ठीक है बेटा, जरूर कर लेना चाहिए। इसमें चार पैसे तो आयेंगे घर पर.. शिखा भी नीरसता से उबर जायेगी। देखता हूं वो आजकल परेशान और चिड़चिड़ी रहती है। उसका मन भी बहल जायेगा भले....।'

'लेकिन पापा, आप लोगों को इस तरह से रोज अकेले छोड़ने को मन नहीं करता। मम्मा तो अपना कुछ कर भी नहीं पाती हैं, फिर उनका दमा दिन-ब-दिन तेज होता जा रहा है। इतने इलाज के बाद भी! आपकी तबियत भी तो ठीक नहीं रहती!'

'नहीं, नहीं बेटा, हमारी चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारी मम्मा को संभाल लूंगा, इतना बीमार भी नहीं हूं।'

'पर पापा, व्हाई शुड टेक रिस्क!'

'तो कोई सर्वेन्ट रख लेंगे और....।'

'आये दिन घरेलू नौकरों के बारे में खबरें देखते-पढ़ते रहते हैं, फिर भी आप! नो पापा नो... यह तो और भी चिन्ता का विषय है। मैं सोच रहा था, आप दोनों 'अपना-घर' में रह लेंगे तो अच्छा रहेगा।'

'ओह...! तो तुमने सब तय कर लिया है कि हमे अब कहां रहना है। मतलब, हमें अपने ही घर से निकाल रहे हो! अपना-घर वही वृद्धाश्रम ना..?'

'नहीं पापा, वृद्धाश्रम नहीं है... फिर आपको कौन सा वहां परमानेन्ट रहना है, सिर्फ दिन-दिन को... शाम को तो आप घर ही आयेंगे और...।'

इतनी देर से चुप्पी साधें बैठी मम्मा एकदम फट पड़ी- 'और क्या और... ? खबरदार, जो इस तरह की बात की। हम बोझ हैं तो हमें इसी घर में छोड़ दो। जाओ, जाकर अलग रहो...?'

'क्या मम्मा, ऐसा कैसे पोसिबल है... हम आपको अकेले छोड़ना नहीं चाहते और आप अलग होने की बात कह रहे हैं। आप दोनों ठण्डे दिमाग से सोचो तो सही... चाहिए तो एक बार चल के देख लेना।'

'मुझे कुछ नहीं सोचना और देखना। तुम सोचो, जाओ सो जाओ।' आदेशात्मक स्वर में कहा। बिन बोले दोनों चुपचाप निकल गये। अब चारों की आंखों से नींदे गायब थी। सुधीर-शिखा को नीद नहीं आ रही थी, यह सोचकर कि मम्मा-पापा को कैसे समझायें-मनाये! मम्मा-पापा को नीद नहीं आ रही थी

कि उनके पैरों तले की तो जमीन ही छीनी जा रही थी।

सुबह आई, मगर ताजगी के साथ नहीं बल्कि बोझिलता और उदासीनता के साथ! दोनों पक्ष परेशान.. दोनों की अपनी-अपनी परेशानी थी। चाहकर भी एक-दूसरे से कम्फर्ट महसूस नहीं कर रहे थे। अपने-अपने कामों में भी दिन ऐसा ही गुजरा! आफिस में भी सुधीर का मन नहीं लगा! कुलकर्णी को बताया तो उसने कहा, 'डोन्ट वरी यार, राधा मैडम उन्हें अच्छे से कन्वेन्स करेगी।' सुधीर को फिर उम्मीद की किरण नजर आयी। राधा मैडम ने उन्हें काफी समझाया, 'अंकल जी आप गलत सोच रहे हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं... आप दिन भर यहां अकेले बैठ-बैठे बोर होते होंगे। तो अच्छा है न, वहां आप अपनी उम्र वालों से बातचीत करेंगे। आपको नये-नये लोग मिलेंगे, दोस्त बनेंगे। आप खुद एक दिन वहां जाकर देखिये... नहीं अच्छा लगे तो फिर मत जाइयेगा। आप खुद समझदार हैं, इत्मीनान से सोचिये।' राधा मैडम की बातों से पापा थोड़े इम्प्रेस हुए, उन्हें लगा ठीक ही तो है। लेकिन मम्मा कुछ सुनने-सोचने-समझने को तैयार नहीं थी। पापा ने उन्हें समझाने की कोशिश की- 'रमा, ठीक ही तो कह रहे हैं। हम इस नीरसता-एकरसता से तो छूटेंगे, फिर शाम को तो अपने घर ही आयेंगे।'

'नहीं, सुधीर के पापा! यह आपका वहम है। लच्छेदार बातों का जादू बोल रहा है। रिश्तेदारी में कहीं दिन भर के लिए या एक-दो दिन के लिए रहना पड़ता है, तो समय काटना कितना मुश्किल हो जाता है... ऐसा लगने लगता है कि अभी के अभी घर पहुंच जायें... घर जैसी राहत कहां मिलती है। अकेले हैं तो भी घर तो अपना है न! आज हम लाचार हैं तो हमें वृद्धाश्रम छोड़कर अपना बोझ हल्का कर रहे हैं। अब इनके लिए हम बोझ ही तो हैं। नहीं... नहीं, बिल्कुल नहीं... आप इनकी बातों में आ सकते हैं, मैं नहीं। मैं अपना घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी। हम दोनों एक-दूसरे को सम्भाल लेंगे।'

'ठीक है, पर इसपे गौर करने में क्या बुराई है ?'

'अच्छाई क्या है ? बेघर होना!'

उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया, देते क्या निरूत्तर हो गये थे। सही ही तो कह रही है- बूढ़े और बीमार हैं तो क्या अपने घर में नहीं रह सकते। उन्हें याद आ रहा है कि किस तरह वे अपने इकलौते बेटे सुधीर से पहले दो बेटियां बाद में एक बेटी। तीनों बेटियां अपने-अपने घर में खुशहाली की जिन्दगी जी रही हैं। बेटा तो एक ही है, इसलिए इकलौता ही तो हुआ... चार बच्चों के बावजूद। फिर बेटियां तो 'पराया धन' हैं। बेटी के घर भला कोई रहता है। बेटियों से बढ़-चढ़कर सुधीर को पाला-पोसा, बुढापे की लाठी जो था। उसी ने घुटने तोड़ दिया। कितना वे सुधीर का ख्याल रखते थे, जो मांगा दिया। एक बार उसने इलेक्ट्रोनिक उड़ने वाला प्लेन मांगा, तीन हजार का था, मंहगा... बजट में नहीं बैठ रहा था। फिर भी इधर-उधर करके दिलाया, पर उसका मन नहीं टूटने नहीं दिया... उसने ही हमें तोड़ दिया। फिर हम इतने अपाहिज तो नहीं है कि हमें वृद्धाश्रम के लिए पार्सल कर दिया जाए, लेकिन.. यह लेकिन उन्हें बार-बार कचोटता रहा इसी कचोट में जाने कब आंख लग गयी। और जब सुबह हुई तो वह भी बोझिल और उदास। शिखा और सुधीर भी रात भर सो नहीं पाये, इसी समस्या का हल ढूंढने में लगे रहे, पर मिला नहीं। सुधीर के आफिस जाने के बाद जब बच्चे स्कूल चले गये तो मम्मी-पापा से उसने फिर बात की। नतीजा, ढाक के तीन पात! यहां तक कि उन्होंने नाश्ता-खाना कुछ नहीं किया था, गुस्से में! उसने बहुत मनाया पर टस से मस न हुए।

'मम्मा, आप समझते क्यों नहीं। फिर खाने से क्या दुश्मनी, इस हालत में मेरा सर्विस करना जरूरी है। अब जमाना बदल रहा है। आप भी तो सर्विस करती रही हैं। आप ही समझने की कोशिश नहीं कर रही हैं।'

'मैंने कब मना किया कि तुम सर्विस मत करो। हम तो खुद चाहते हैं कि तुम भी सर्विस करो ताकि घर में कुछ राहत हो। लेकिन यह वृद्धाश्रम बीच में कहां से आ गया ? तुम्हारी नौकरी का मतलब यह तो नहीं कि हमें घर से बेघर कर दिया जाये..? अपनी

जड़ों से उखाड़ दिया जाय... हमारा कुसूर क्या है...? बूढ़ापा ? फिर इससे कौन अछूता रहा है...?'

'पर मम्मा....'

'पर-वर कुछ नहीं, मुझे तुम्हारी एक नहीं सुननी। तूने ही सुधीर के कान भरे होंगे। जब मेरे हाथ-पांव चलते थे, तब तो कभी तुम्हारे मन में ऐसा स्थान बिल्कुल नहीं आया... बिन पैसे की नौकर जो थी, अब बोझ हूं ना ?'

'नहीं मम्मा, आप ऐसा मत कहिए आप बोझ नहीं हैं। आपकी जरूरत है हमें, तभी तो हम आपको इस हालत में अकेले नहीं छोडना चाहते। देखिये न आपकी तबीयत बार-बार बिगड़ जाती है। अभी तो मैं रहती हूँ घर में। अकेले रहेंगे तब तबीयत बिगड़ी तो कौन देखेगा। पापा की भी तो उम्र हो गयी है, फिर उनकी तबीयत भी कहां अच्छी रहती है... आप जानती ही हैं। मम्मा प्लीज... अभी मुझे सर्विस मिल रही है, बार में ऐसा चांस शायद न मिले। घर के इतने पास वाकिंग डिस्टेस सिर्फ पन्द्रह बीस मिनट का है। वरना मुम्बई से लोग कहां-कहां से नहीं आते! शीला जिसने मुझे वैकेन्सी के बारे में बताया था, पता है वो कहां से आती है ? पेण से! बस मेरा इतना ही कहना है आप एक बार सोचकर तो देखिये।'

'क्या खाक सोचूँ, जब तुमने सोचकर रखा है कि हमें तो बोरिया-बिस्तर बांधना ही है ना!'

'ओह मम्मा! इतना भी क्या... एक बार खुद को मेरी जगह रखकर देखिये।' अब मम्मा ने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि मुंह फेर लिया; मानो मूक निर्णय दे दिया।

उधर आफिस में भी सुधीर की चर्चा कुलकर्णी से और राधा मैडम से हुई- 'मैडम मुझे समझ में नहीं आता कि इस समस्या का हल कैसे निकालूं ?'

'मिस्टर सुधीर मेरी मानें तो उन्हें एक बार वहां घुमाने के बहाने ले जाइये। यकीन जानिये, सब...।'

'पर ले जाऊं कैसे! वो तो कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हैं।...कोई तैयार न हो तो उसे समझाना, कन्वेस करना बड़ा मुश्किल हो जाता है।'

'ठीक है उन्हे थोड़ा वक्त दीजिये, दो-चार दिन इस बारे में बिल्कुल बात मत कीजिए, सब नार्मल होने दीजिये। तब तक वे भी किसी निर्णय पर पहुच जायेंगे। आपके पापा समझ गये, पर मम्मी एक्सेप्ट नहीं कर पा रही हैं। फिर, मिस्टर सुधीर यह सब इतना असान नहीं होता! जिस घर में उन्होंने जिन्दगी गुजारी है, भले-बुरे दिन देखे हैं। वहां भले वे अकेले हों पर अकेलापन इतना नहीं सालता। उन दरो-दीवारो में उनके अहसास समाये हुए हैं, उन्हें सब भरा-भरा लगता है। अहसासों से कटना आसान नहीं होता! इसलिए हमने सीनियर सिटीजन के लिए डे-केयर स्थापित किया है, ताकि वे अपने अहसासों से, अपनी जड़ों से कट न सकें। दिन भी नवीनता और ताजगी से कटे... यहीं उन्हें समझाना है। इसके लिए थोड़ा वक्त दीजिये। कितना भी सब कुछ अच्छा हो, फिर अपना पूरा दिन वहां व्यतीत करना बड़ा मुश्किल होता है। हम भी तो कहीं दो-चार दिन निकालने के बाद घर के लिए लालायित रहते हैं... जो भी हो, घर घर ही होता है। फिर भी बदलते परिवेश में यह सब भी करना पड़ता है... न चाहते हुए भी।'

'ठीक है।' कहते हुए लम्बी निःवास छोड़ी और कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। सब लोग अपनी-अपनी टेबल पे चले गये, तो वो भी चला गया और अपनी रूटीन में लग गया; पर उसका मन नहीं लग रहा था। जैसे-तैसे पांच बजने का इन्तजार करने लगा। घर आकर देखा माहौल काफी टेन्स चल रहा था। शिखा भी अपसेट लग रही थी। दोनों ने दिन भर की बातें शेयर की। चिन्ता का विषय यह था कि मम्मा-पापा ने अब तक चाय के सिवा कुछ नहीं लिया था। पापा ने भी मम्मा को बहुत कहा- खाना खा लो, इस बारे में सोचेंगे बाद में। मम्मा ने नहीं खाया... तो पापा ने भी नहीं खाया। मेरा भी मन नहीं किया।'

'ठीक है, मैं बात करता हूं मम्मा से। अभी कह देते हैं जैसा आप चाहेंगे होगा। चार-पांच दिन बाद सोचेंगे...।'

'पर मुझे तो कल ही ज्वाईन करने को कहा है... ?'

'तुम एक वीक का टाईम मांग लो। यही ठीक रहेगा। मम्मा-पापा को अकेला कैसे छोड़ दें। मैं जाता हूं... तुम चाय-नाश्ता वहीं ले आओ।'

'ये क्या मम्मा! अपने अब तक कुछ भी नहीं खाया ? अब तक सिर्फ एक कप चाय पर... डायबिटीज और ऊपर से बांकी तकलीफें...। सच मम्मा, आप भी बच्चों की तरह करते हैं....!' मम्मा ने करवट बदली। देखा- चेहरा उजड़ा, रो-रा कर सूजी हुई आंखें! देखकर सुधीर का मन जाने कैसा हो रहा था, आखें भर्र आइं, दौड़कर मां के गले लगा, एकदम फफक पड़ा- 'नहीं मम्मा, नहीं। जैसा आप चाहेंगे...! प्लीज इस तरह खुद को और अपने इस नालायक बेटे को सजा मत दो।' मां-बेटे दोनों एक दूसरे के आंसू पोछ रहे थे। पापा की आंखें भी गंगा-जमुना हो रही थीं। उधर शिखा चाय-नाश्ते की ट्रे हाथ में लिए, स्तब्ध खड़ी खुद को अपराधी महसूस कर रही थी। पल भर को विचार कौंधा- 'भाड़ में जाये सर्विस' मन भर आया। कुछ देर में स्वस्थ होकर सबने चाय पी, नाश्ता किया। मम्मा को तसल्ली थी कि उन्हें जाना नहीं पड़ेगा। जैसे एक बच्चे को भरोसा और इत्मीनान हो जाता है कि उसके मां-बाप उसे बहुत प्यार करते हैं, यह ख्याल उसे आ कर देता है; उसी तरह मम्मा-पापा भी आश्वस्त हो रहे थे। इत्मीनान से चाय पी रहे थे। एकाएक शिखा बोली- 'मम्मा थोड़ा और लीजिए।'

'हां बेटा, दे-दे अभी भी मुझे शिवरिंग हो रही है।' इस तरह आश्वस्त करके और होकर के सबने दुबारा लिया। पापा ने तो फिर से चाय बनाने को भी कहा। एक सप्ताह अच्छी तरह से बीता सब नार्मल हो गया था। लेकिन मंडे मांर्निग अचानक गाज गिरी। सुधीर उनका टिफिन, दवा, पानी की बाटल नैपकिन इत्यादि कुछ जरूरी सामान पैक कर रहा था। तब तक मम्मा-पापा का ध्यान ही नहीं गया। एकाएक सुधीर की आवाज सुनाई दी- 'चलिये पापा, आप गाड़ी में बैठिये। मैं मम्मा को लेकर आता हूँ।'

पापा कुछ कह ही नहीं पाये...बस, हक्का बक्का से ताकते रहे। समझ गये कि बेटे ने धोखा किया। मगर मम्मा चुप न रह सकी।

शिखा चाय-नाश्ते की ट्रे हाथ में लिए, स्तब्ध खड़ी खुद को अपराधी महसूस कर रही थी। पल भर को विचार कौंधा- 'भाड में जाये सर्विस' मन भर आया।

'ओ तो तूने प्यार की आड़ में घात की, मैं तो समझी थी कि.... लेकिन, खैर, फिर भी तुम मेरी बातों का जवाब ईमानदारी से देना- जब तुम छोटे थे हमने कितने नाज से तुम्हें पाला था। कई बार तुम्हारी बहनों का हिस्सा भी तुझे दे दिया। तू छोटा था, बेटा था, बहनें भी खुशी-खुशी अपने भैया को दे देतीं... याद है एक बार तुम कितने बीमार पड़े थे, उल्टियां-दस्ते पानी की तरह बह रही थी, रुकने का नाम नहीं ले रही थीं। बदन बुखार से तप रहा था। मैं आठ दिन आफिस भी नहीं गयी थी। तुम्हारी उल्टियां दस्ते हाथों में लेकर नाली में फेंकती थी। तुझे तकलीफ न हो इसलिए तुम्हे नहीं उठाती थी। कितनी बार साबुन से हाथ धोने पर भी बास नहीं जाती थी। ऐसे में भी हमने तुम्हें बोझ नहीं समझा.... कभी तुझसे घृणा नही की! मेरे दमे को लेकर भी तुम लोगों को परेशानी होती है, इसलिए हमें अपने कमरे में खाना दिया जाता है.... कितना अपमानजनक और तकलीफदेह लगता है। खुद को अनवांटेड महसूस करते हैं, पर तुम क्या जानो... ! सर्विस तो मैं भी करती थी, तुम्हारे दादी-दादाजी और हम सब साथ ही रहते थे। उनके लिए खाना अलग नहीं दिया जाता था, सब एक साथ ही खाते थे। इस घर के बड़े थे, घर उनका था, हम उनके बच्चे थे। पर तुझे क्यों कह रही हूं... तुझे क्या फर्क पड़ेगा....?'

'सब समझ रहा हूं मम्मा, ... एक-एक बात याद है, कुछ नहीं भूला हूँ और न ही ताउम्र भूल पाऊंगा। पर मम्मा मेरी भी एक बात का जवाब देना। मेरे जन्म के बाद दो सालो में दादा दादी दोनों गुजर गये थे। घर में कोई देखभाल करने वाला नहीं था। दोनों दीदी भी छोटी थी, स्कूल भी जाती थी; फिर रीना का भी जन्म हो गया था। तब जब आप आफिस जाते थे, तो हमें कहां रखते थे... ?'

मम्मा एकदम आवाक...! जवाब ही नहीं दे पायी, आखों के आगे क्रेश घूम गया और....।

साक्षात्कार

✍
आनंद कुमार शुक्ला
anandshukla751@gmail.com

कहानीकार आनंद कुमार शुक्ला की प्रस्तुत कहानी, प्रतियोगी परीक्षाओं में व्याप्त भृष्टाचार को रेखाँकित करती है। एक साक्षात्कार की पृष्ठभूमि में कहानीकार ने बहुत रोचक ढ़ग से भृष्टाचार पर व्यंग्य किया है।

धनीराम का चयन बोर्ड में साक्षात्कार था। वह प्रातः 10 बजे ही चयन बोर्ड की इमारत के ग्राउंड फ्लोर में पहुँच गया। वहाँ रखी कुर्सियों पर धूल जमीं हुई थी। धनीराम ने कोने की कुर्सी अंगौछे से साफ की और बैठकी ली। वहाँ कई अन्य अभ्यर्थी भी थे। कुछ खड़े थे। कुछ लाइन में लगे थे। नाम पुकारने वाला व्यक्ति बड़ा सा तिलक लगाए मुँह में पान चबाते हुए केवल एक बार नाम पुकार रहा था। पहली बार में संज्ञान न लेने वाले अभ्यर्थी को डाट खाते हुए दो घंटे इन्तजार की सजा उसी ने निर्धारित की थी। आधा नाम मुँह में आधा थूंक के साथ बाहर। थोड़ी देर बाद 'धनीराम' शब्द सुनाई दिया। धनीराम ने साथ लिए झोले में देखा। सभी मूल प्रमाणपत्र और उनकी छायाप्रतियाँ वहीं थीं। वह खड़ा होकर लाइन में लग गया। एक हाथ में छायाप्रतियों को और दूसरे हाथ में मूल प्रमाणपत्रों का झोला लिए उसने पीठ पास की दीवाल से टिका दी। करीब आधे घंटे बाद उपस्थिति पत्र पर हस्ताक्षर करके वह प्रथम तल में गया। वहाँ भी लाइन ही लगी थी। जाते ही गार्ड ने उसे भरने के लिए एक प्रपत्र दिया। वह प्रपत्र लेके किनारे रखी कुर्सी पर बैठ गया। और सिर को थोड़ी देर के लिए कुर्सी पर बैठे हुए ही ढीला कर दिया। शिथिलता ने उसे आ घेरा। असल में विगत कई दिनों से साक्षात्कार के सभी आवश्यक कागजों को इकठ्ठा करने में वह थक गया था। सबसे अधिक उसे गुस्सा उस डॉक्टर पर आया जिसने स्वास्थ्य प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर के बदले सौ रुपयों की मांग की। जब धनीराम ने मना किया तो डॉक्टर ने कहा – "एक रुपये की पर्ची कटाकर आफिस में जमा कर दीजिए और पाँच दिन बाद आइए।" मजबूरीवश उसने स्वस्थ रहने का प्रमाण पत्र उसी दिन लिया।

धनीराम के घर से चयनबोर्ड 60 किमी की दूरी पर था, सो उसे सुबह ही निकलना पड़ा। माँ ने गुड़-दही खिलाकर भेजा। पिता ने जेब टटोलकर कोई 200 रुपये तक दिए और कहा – "पैसेंजर लेट रहै तौ रोडवेज पकड़ लिहा।" धनीराम की तन्द्रा वापस लौटी। उसने झोले से पेन निकाली और प्रपत्र भरना शुरु किया।

बगल में बैठे अभ्यर्थी ने पूछा– "कौन सा विषय है ?"

धनीराम ने उत्तर दिया – "हिंदी।"

'अरे , ...कितना सही है ?' उसने दुबारा पूछा।

'115...' धनीराम ने कहा।

"अमानत तो आपने पहुँचा दी होगी!" उसने फिर कहा।

धनीराम– "नहीं, मैंने नहीं दिया।"

अभ्यर्थी ने कहा- "अरे... आपने रिस्क क्यों लिया ? यदि पैसे देते तो श्योर हो जाता। यदि न होता तो पैसे वापस। मेरा तो 112 ही सही है, परन्तु मैंने अमानत दे दी है । आगे भगवान की मर्जी।"

धनीराम ने पूछा– "आपने कितना दिया है ?"

कुछ धीरे से उत्तर मिला – "ढाई लाख....नहीं हुआ तो वही नोट वापस हो जाएगी। यहाँ तो बेईमानी भी ईमानदारी से होती है... हा-हा-हा।'

धनीराम ने फिर कुछ नहीं कहा। वह प्रपत्र भरने लगा। प्रपत्र भरकर उसने लाइन लगा ली। पंक्ति में वही अभ्यर्थी उसके पीछे खड़ा था। उसने फिर कहा– "देखिए.. यदि आपका साक्षात्कार अध्यक्ष वाले बोर्ड में पड़ता है, तो उसमे पैसा नहीं चल रहा। यदि दूसरे में पड़ा तो... दिक्कत है।"

"अध्यक्ष वाले में!" –धनीराम ने कहा।

अभ्यर्थी– "हाँ, इस बार अध्यक्ष के बोर्ड में पैसा नहीं चल रहा। पर नंबर नहीं मिलता है। बाकी बोर्डों में पैसा बोल रहा है । वे 50 में 45 से ऊपर दे देते हैं।"

तब तक धनीराम का नंबर आ गया। जाँचबाबू ने सभी प्रमाण-पत्रों की जाँच की। फिर अनुक्रमांक मिलाते हुए धीरे से बोला– "आप 10 मिनट बाद आएँ।"

धनीराम दुबारा उसी किनारे वाली कुर्सी में बैठ गया। सामने की तरफ और ऊपर कैमरे लगे थे। वह उन्ही को देखने लगा। तभी वही अभ्यर्थी फिर धनीराम के पास आया और बोला –"हमारा तो नंबर आ गया। छठवें बोर्ड में पड़ा है , और आपका ?"

धनीराम–" जी, मुझे 10 मिनट बाद आने को कहा है। अभी नंबर नहीं दिया।"

अभ्यर्थी– "ओहो! ....देखिए, शायद बातचीत करने को रोक लिया हो। अगर बोले तो कह देना कि मुझे पता नहीं था। इंटरव्यू होते ही दे दूँगा। खैर, मेरा नाम 'धीरज कुमार' है। यहीं 'फाफामऊ' का रहने वाला हूँ। आप अपना मोबाइल नंबर दे दें। बातचीत होती रहेगी।"

उसने धनीराम को बुलाकर कहा– "आपके लिखित परीक्षा में अंक तो अच्छे हैं। आपने किसी को कुछ दिया है ?"

'जरूर' कहकर धनीराम ने मोबाइल नंबर दिया, उसका नंबर लिया। मोबाइल नंबर लेने के बाद धीरज चला गया। लगभग 10 मिनट बाद धनीराम जी उठके खिड़की के पास गया। बाबू ने उन्हें देखा और रुकने का इशारा किया। वह वहीं थोड़ा हटके खड़े हो गया। जब पंक्ति में लगे अंतिम अभ्यर्थी का बोर्ड निर्धारित हो चुका तो उसने धनीराम को बुलाकर कहा– "आपके लिखित परीक्षा में अंक तो अच्छे हैं। आपने किसी को कुछ दिया है ?"

धनीराम ने कहा–" नहीं सर , मुझे पता नहीं था। पहली बार आया हूँ। आप इंटरव्यू हो जाने दीजिये | मैं बाद में दे दूँगा।"

बाबू– "ऐसे नहीं होता सर! मैंने सोचा शायद किसी के मार्फ़त दिए हों, और यहाँ न लिखा हो..! आपको कम से कम महीने भर पहले देना चाहिए। इंटरव्यू थोड़ी कोई रोक सकता है, वह तो होगा ही। लीजिये, निर्देश पढ़ के दूसरे तल पर जाइए।"

धनीराम ने देखा- बोर्ड नंबर 6 की उसे पर्ची मिली हुई थी। पर्ची के पीछे लिखा था– 'यह पर्ची केवल परीक्षक द्वारा ही खोली जाएगी। अभ्यर्थी द्वारा खोले जाने पर दंडनीय अपराध है।'

धनीराम द्वितीय तल पर बोर्ड नंबर 6 वाले कमरे के सम्मुख खड़ा हो गया। वहीं फिर धीरज कुमार दिखा। जैसे ही उसने धनीराम को देखा, पास

आया और बोला– "अरे, आपका इसी बोर्ड में है क्या?"

धनीराम ने 'हाँ' में सिर हिलाया | धीरज ने फिर कहा– "यदि आपका अध्यक्ष वाले में पड़ता तो ठीक रहता। खैर, देखिए...। सारे प्रश्नों के उत्तर दीजिएगा।"

धनीराम ने 'हूँ' में उत्तर दिया। तथा एक किनारे खड़े होकर झोले से नोट्स निकाली और उन्हें देखने लगा | अगल-बगल खड़े कई अन्य अभ्यर्थी भी पास आकर उसी की कॉपी देखने लगे।

एक ने कहा– "आपने अच्छी मेहनत की है। नोट्स बनाकर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता।"

धनीराम ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद धीरे-धीरे सभी हट गए । केवल धीरज कुमार ही उसके पास खड़ा होकर कॉपी देख रहा था। उसने धनीराम से नोट्स के एक ज़ेरॉक्स की मांग की। धनीराम ने उसकी ओर बिना देखे ही पन्ने पलटना जारी रखा। तभी चपरासी ने धीरज कुमार का नाम पुकारा और वह बोर्ड नंबर 6 के साक्षात्कार कक्ष में चला गया। थोड़ी देर बाद वह बाहर आया। तब तक धनीराम ने पढ़ना बंद कर दिया था। कॉपी झोले में थी। लंच ब्रेक हो चुका था। धनीराम के पूछने पर धीरज कुमार ने कहा कि उससे कोई भी कठिन प्रश्न नहीं पूछे गए, क्योंकि उसने कोड बता दिया था। कोड के विषय में जब धनीराम ने पूछा तो उसने कहा–"जिसने पैसे दिए हैं, उसे कोड मिले हुए हैं | मुझे भी मिला है | मैंने वही बोला तो उन्होंने फिर कोई कठिन प्रश्न नहीं किया।"

धनीराम ने कहा– "मैंने सुना कि वीडियो रिकार्डिंग हो रही है ?"

धीरज ने कहा– "अरे भाई, वीडियो-वूडियो कुछ नहीं हो रहा। सब ढकोसला है। केवल अध्यक्ष के बोर्ड में वीडियो चल रहा है, बाकी सभी कैमरे बंद हैं। और वह भी इसीलिए कि इसी महीने चुनाव होने हैं। कुछ तो ईमानदारी बरतनी होगी। सो कैमरे लगा दिए... वह भी बंद। हा हा हा।" थोड़ी आवाज धीमी करके वह फिर बोला– "और सुनने में आ रहा है कि एक लड़के का प्रवक्ता में बिना इंटरव्यू दिए ही हो गया।"

धनीराम ने फिर कुछ नहीं कहा, बस एक लम्बी सांस खीची और छोड़ दी।

दिन के कोई ढाई बज रहे थे। लंच का समय समाप्त होने वाला था। चपरासी साक्षात्कार कक्ष के दरवाजे के पास ही बैठा था। तभी घंटी बजी। चपरासी तुरंत अन्दर गया। कुछ समय बाद हाथ में जूठे-पत्तलों की 'पालीथीन' लेकर बाहर निकलते हुए उसने धनीराम को अन्दर जाने का इशारा किया।

धनीराम ने कक्ष में घुसते ही प्रणाम किया, और सामने रखी कुर्सी पर बैठते हुए प्रमाणपत्रों का झोला पास में रख लिया। वहाँ उसे केवल दो ही परीक्षक दिखे- एक पुरुष और दूसरी महिला। पुरुष परीक्षक ने धनीराम के हाथ से पर्ची लेके देखी, फिर उसे खोला। फिर धनीराम को देखा और पूछा– "आपकी क्या योग्यता है ?"

"जी मैं .. परास्नातक हूँ।"

"अच्छा, परास्नातक में आपने मुख्य कवि के रूप में किसे रखा ?"

"जी .....सूर्यकांत त्रिपा..."

धनीराम वाक्य भी पूर्ण न कर पाया था कि पुरुष परीक्षक का मोबाइल बज उठा। धनीराम ने प्रत्यक्ष दूरभाष से यही सुना– "जी जी। अरे हो

धनीराम वाक्य भी पूर्ण न कर पाया था कि पुरुष परीक्षक का मोबाइल बज उठा। धनीराम ने प्रत्यक्ष दूरभाष से यही सुना– "जी जी। अरे हो जाएगा....आप चिंता न करें। अभी तो नहीं आया। ...क्या नाम बताया आपने ...रामेश्वर सिंह। ओके सर। जी गया था मैं वहाँ। हाँ..हाँ..अब याद आ गया। वही लड़का! .हाँ ...ओके सर। ओके ओके।"

जाएगा....आप चिंता न करें। अभी तो नहीं आया। ...क्या नाम बताया आपने ...रामेश्वर सिंह। ओके सर। जी गया था मैं वहाँ। हाँ..हाँ..अब याद आ गया। वही लड़का! .हाँ ...ओके सर। ओके ओके।"

दूरभाषवार्ता पश्चात पुरुष परीक्षक ने कहा–" अभी कितने 'कंडीडेट' हैं बाहर ?"

"जी, दो-तीन..." धनीराम ने कहा।

"अच्छा ठीक है, जाओ। अगले को भेज दो।"

कुर्सी से उठते हुए धनीराम ने प्रमाणपत्रों का झोला लिया और पुरुष परीक्षक की ओर देखा। वे 'पेंसल' से अंकपत्र पर अंक चढ़ा रहे थे। महिला परीक्षक मोबाइल पर कुछ देख रही थी।

करीब दो महीने बाद साक्षात्कार के परिणाम की जानकारी धीरज कुमार के फोन आने से प्राप्त हुई। धीरज ने कहा– "मित्र.... मैं धीरज। हाँ...जो माध्यमिक चयन बोर्ड में मिला था। रिजल्ट आ गया। मेरा चयन हो गया है, और आपका....?"

धनीराम ने कहा– "अभी नहीं देखा। देख के बताऊंगा।" फोन करने का आश्वासन देकर धनीराम ने फोन काट दिया।

पास में ही धनीराम के पिता 'छपरा' के नीचे 'ओरचावन' कस रहे थे। उन्होंने पूछा- "का...रेजल्ट आइ ग का...।"

धनीराम ने कहा–"हाँ।"

"का भा ?" –पिता ने पूछा।

"जात अही चौराहा, कंप्यूटर पै देखाई।"

"दुकनिया खोले होई अबहिन।"

"खोल तौ देत हा उ तीनै बजे ...चार बजत अहैं।"

"तनी मंदिरी मा हाथ जोड़े जाया।"

थोड़ी देर बाद धनीराम लौटा। माता-पिता दोनों 'छपरा' के नीचे 'ओरचावन' कसी हुई 'खटिया' में बैठे थे। धनीराम ने बिना किसी से कुछ कहे ही, प्रतिदिन की भाँति द्वार पर बंधी हुई गाय के गले से 'गेराईं' खोली। डंडा लिया, और उसे नदी की तरफ हाँकते हुए पीछे-पीछे चलने लगे।

नवांकुर

तितलियों-सा मन है मेरा

तितलियों-सा मन है मेरा
आसमान को छूना है
इंद्रधनुष की किरणों-सा
जीवन में रंग भरना है!
मंजिल कितनी कठिन भले हो
उसको पाना, मेरा सपना है
बरखा के बूंदों संग
इस धरती में मुझे बरसना है!

जीवन में कुछ भी कठिन नहीं है
अब ठान लिया तो करना है
चूम उन्नति के उच्च शिखर को
जहां मे एक नई मिसाल बनाना है!

अंजली शुक्ला
उमरगहना, मलवां, फतेहपुर (उ. प्र.)
shuklaanjali126@gmail.com

आओ घोड़ा-घोड़ा खेलें!

हम दोनों भाई-बहिन में खूब प्यार था तो हम दोनों खूब लड़ते-झगड़ते भी थे। यदि किसी बात पर मम्मी, भाई को डांटती तो मैं उसकी ओर हो जाती, और पापा मुझे डांटते तो भाई मेरी ओर हो जाता। तभी तो मम्मी-पापा कहने लगते- ' इन दोनों के झगड़ों मेंपड़ना तो बिल्कुल बेकार है। दोनों एक ही हैं।'

मैं भाई से छोटी हूँ, और भाई शारीरिक रूप से मुझसे तंदुरूस्त है। एक दिन हम दोनों घोड़ा-घोड़ा खेल रहे थे। मम्मी-पापा सोफे पर बैठे चाय पी रहे थे, और हम दोनों को देख रहे थे। भाई मेरी पीठ पर बैठ गया और मुझे हांकते हुए बोला था- 'चल मेरा घोड़ा....टिक टिक टिक।' भाई का वजन मैं कैसे भी सहन कर रही थी। मम्मी भाई को देख-देखकर खूब खुश हो रही थीं।

जब भाई की बाजी पूरी हुई तो मेरी बाजी आई। मैं जैसे ही भाई की पीठ पर बैठी और 'चल मेरा घोड़ा टिक!' कह भी नहीं कह पाई थी कि मम्मी की तेज डांट मेरे कानों में पड़ी- 'उतर-उतर-उतर नीचे।'

मैं नीचे उतर गई थी।

'मैं अपनी बाजी लूंगी, बस।' मैं खिसियायी थी।

'तेरा दिमाग सड़ गया है। ऐसे खेल लड़कियों को शोभा देते हैं क्या।' मम्मी ने पापा की ओर देखते हुए कहा।

'...और अभी भइया मेरे ऊपर घोड़ा-घोड़ा कर रहा था, तब..... तब.... तो आप नहीं बोली थीं।' मैंने कहा था मम्मी से। मैंने देखा था पापा भी मम्मी से यही बात कहना चाह रहे थे।

'उसकी बात और है।' मां गुर्रायी थी।

'क्यों, उसकी बात और क्यों है।' मेरा तर्क था।

'क्योंकि लड़का है वह। तेरी आदत अभी से बराबरी की पड़ गई तो आगे चलकर तो तू बादर (बादल) ही फाड़ देगी।' मम्मी अब हाथ ताने मेरे पास खड़ी थीं। मेरा भाई मम्मी की टांग पकड़े विजेता की तरह मुस्करा रहा था, लेकिन पापा की आँखों में पानी था।

डॉ. पूरन सिंह

drpuransingh64@gmail.com

डॉ. पूरन सिंह जाने माने कहानीकार हैं। वर्तमान में भारत सरकार में प्रथम श्रेणी अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं। देश की स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियां, लघु कथाएं, कविताएं, यात्रा-संस्मरण, लेख, साक्षात्कार और अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। विभिन्न सामाजिक मान्यताओं पर कटाक्ष करती इनकी दो लघुकथाएं प्रस्तुत हैं।

मैं गिरगिट नही हूँ बाबू!

मैंने देखा कि बड़ी सी लम्बी दाढ़ी वाला एक व्यक्ति मेरे सामने से निकलता जा रहा था। मैंने अपने दोनों हाथ फैलाकर उसके लिए दुआ मांगी थी- 'दे दे, अल्लाह के नाम पर दे दे।' उसने मेरे हाथों पर रोटी रख दी और चला गया था।

थोड़ी देर बाद, एक लम्बी चोटी और मोटे पेटवाला व्यक्ति निकला, जिसके पेट पर लम्बा सा जनेऊ लटका हुआ था, मैं दोनों हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया- 'भगवान के नाम पर दे दे बच्चा, बहुत भूखा हूँ।' उसने भी झट से रोटी मेरे हाथ पर रख दी और चला गया था।

इसी तरह, कुछ देर बाद एक व्यक्ति और निकला उसने खूब अच्छे कपड़े पहने था। उसके गले में क्रॉस लटक रहा था। मैंने तुरंत गुहार लगाई- ' कुछ खाने को दे दो साहब , भगवान यीशु तुम्हें आशीष देगा। उसने भी मेरे हाथों पर रोटी रख दी और चला गया था।

मेरे मांगने के स्थान से थोड़ी दूर पर ही एक आदमी खड़ा था। वह मुझे बहुत देर से देखे चला जा रहा था। वह मेरे पास आया और तीर-सा सवाल किया- 'ए भिखारी! तू तो बड़ा चालाक है। गिरगिट की तरह रंग बदलता है। आखिर तेरा धर्म क्या है ?'

मैंने उसकी तरफ देखा और बोला- 'भूख ही मेरा धर्म है। जो भी रोटी दे देता है, उसी के अनुसार मेरा धर्म हो जाता है। ...लेकिन, मैं गिरगिट नहीं हूँ बाबू।'

वह आदमी सोच में पड गया और तेजी से वापस चला गया।

नागार्जुन

जन्म: जून 30, 1911, ज्येष्ठ पूर्णिमा।
जन्म स्थान: बिहार के दरभंगा जनपद के तरौनी गाँव में।
शिक्षा: परम्परागत प्राचीन पद्धति से संस्कृत की शिक्षा।
पूरा नाम: वैद्यनाथ मिश्र

हिन्दी में 'नागार्जुन' और मातृभाषा मैथिली में 'यात्री' नाम से लेखन। शिक्षा समाप्ति के बाद घुमक्कड़ी का निर्णय। गृहस्थ होकर भी रमते राम। स्वभाव से आवेगशील, जीवंत और फक्कड़। राजनीति और जनता के मुक्ति-संघर्षों में सक्रिय और रचनात्मक हिस्सेदारी। साहित्य अकादमी व उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से सम्मानित।

उपन्यास : रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, बलचनमा, वरुण के बेटे, कुंभीपाक, अभिनंदन, उग्रतारा, इमरतिया, गरीबदास, नई पौध, आदि।

कविता संग्रह : युगधारा, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ, चंदना, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, रत्नगर्भ, ऐसे भी हम क्या-ऐसे भी तुम क्या, ऐसा क्या कह दिया मैंने, इस गुब्बारे की छाया में, भूल जाओ पुराने सपने, हजार-हजार बाँहों वाली, पका है यह कटहल, अपने खेत में, मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा।

खंडकाव्य : भस्मांकुर, भूमिजा।
हिंदी में अनुदित मैथिली कविता संग्रह : चित्रा, पत्रहीन नग्न गाछ।
मैथिली उपन्यास : पारो।
संस्कृत काव्य : धर्मलोक शतकम्।
निधन: नवम्बर 05, 1998 को लूबी बीमारी के बाद दरभंगा में।

आम और खास के जिस फर्क को मिटाने की बात नागार्जुन करते थे वह उन्होंने अपने जीवन में काफी पहले ही पाट दिया था। रचननकारों की दुनिया में एक मुहावरा खूब चलता है- 'साहित्य लिखना नहीं, उसे जीना।' इस मुहावरे पर खरे उतरने वाले रचनाकार विरले ही होते हैं, और नागार्जुन इन्हीं विरले रचनाकारों में शामिल थे। वे जिंदगीभर अपने फक्कड़ अंदाज के कारण जाने गए। बाबा नागार्जुन की सभी कविताएँ जन-सरोकारों से जुड़ी हुई हैं। उनके विपुल काव्य-साहित्य को इस लघु पत्रिका में समेटा पाना, वह भी मेरे जैसे नौसिखिए संपादक के बस की बात नहीं है। एक प्रयास है कि बाबा द्वारा रचित विविध काव्य संदर्भों से 'मधुराक्षर' के पाठकों को अवगत कराया जा सके। प्रयास कैसा रहा, इसके लिए आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी। बाबा की अपनी कविताओं के बारे में क्या राय थी, उन्हीं के शब्दों में- "मैं सिर्फ़ इतने भर से संतुष्ट होकर नहीं रह जाना चाहता। मैं उस सारी आबादी को अपनी कविता के मार्फत पुकारना एवं एकत्र करना चाहता हूँ जो ठगी जा रही है और अधिकार वंचित है। मेरे लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मेरी कविता का चेहरा-मोहरा सुडौल अथवा सुरम्य है या नहीं, या कि उसमें झटपटापन और खुरदरापन है या कि वह किसी औघड़ की भाषा लगती है। उसमें चिकनापन और शालीनता नहीं है। इसकी जगह ठोस गालियां हैं। आक्रामकता है। हमारे-तुम्हारे आमने-सामने की बात है। फक्कड़पन और बेधड़कता है तो मैं क्या करूं ? मैं उस मध्यमवर्गीय बिरादरी में नहीं घुसना चाहता जहां कविता और साहित्य अपना एक स्वायत्त लोक बना चुके हैं। मेरी कविता तो गाँव से आई हुई एक चिट्ठी है जिसे परदेसी मजदूर अपने ठेले-रिक्शों पर बैठ किसी से बंचवा कर एक साथ सुन रहे हैं। मेरी संवेदना का क्षेत्र यही है, मटमैला जीवन, मैले-कुचैले लोग, गरीबी और भूख की मार झेलते हुए, जिन्हें उस प्रगतिवादी दृष्टि ने एक रूढ़ काव्य विषय बनाकर छोड़ दिया है। यह दृष्टि यह भी नहीं समझ पाती कि इनके जीवन में कातरता या निरीहता के लिए कोई जगह नहीं है। इन पर करुणा की बौछार करने की जरूरत नहीं। विपरीत इसके इन्हें सचेत करने की जरूरत है। मैं चाहूँ तो 'बादल को घिरते देखा है' जैसी कविताएँ लिख सकता हूँ। मैं यहाँ निराला का फालोवर हूँ पर मेरी अपनी निगाह वहाँ भी स्वाधीन है। निराला भव्य और दिव्य की सृष्टि करते हैं। उनकी कविता में एक दैवीपन है। मेरी कविता यह सब अफोर्ड नहीं कर सकती। बनारस के अपने अध्ययनकाल में यह सब पाखंड मैंने खूब देखा है। निराला तो रामकृष्ण परमहंस के मठवासी सन्यासियों के बीच रहे थे। वह कभी-कभी रवीन्द्रनाथ तो कभी विवेकानन्द होकर रहना और जीना चाहते थे। मेरी यह इच्छा कभी नहीं हुई। मैं चाहता हूँ किसी औघड़ कवि सा होकर जिऊं और दुर्वासा की तरह जितना कड़वा सच बोल सकूं बोलूं। मीठे का असर तो अब होना नहीं। मीठे को डकार जाने और पचा लेने की कला इन लोगों ने खूब सीख ली है।" बाबा नागार्जुन की कविताओं के साथ उनका रचना-वर्ष दिया गया है, जिससे पाठक बाबा के रचना समय और वर्तमान के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर सकें-

मन करता है...

मन करता है...
नंगा होकर कुछ घंटों तक
सागर-तट पर
मैं खड़ा रहूँ
यों भी क्या कपड़ा मिलता है ?

मन करता है...
नंगा होकर दूँ आग लगा,
जो पहन रखा है उसमें भी
फिर बनूं दिगंबर बंभोला
नंगा होकर विषपान करूं
सागर तट पर-
ओ कालकूट तू कहाँ गया ?
ओ हालाहल तू कहाँ गया ?
अमृत की बात नहीं पूछो,
विष तक की बूँद नहीं मिलती
देवता हुए निर्लज्ज, सभी को छिपा दिया।
कहते, जाओ, उनसे माँगो
जो क्षीर उदधि में शेषनाग की शैया पर
कर रहे शयन।
भंडार हमारा खाली है...
भगवान सभी के मालिक हैं...
लाचारी है,
कुछ भी हम तुमको दे न सके!

मन करता है...
मैं नंगा होकर चिल्लाऊँ
मैं ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाऊँ
यदि मरा न होगा, सुन लेगा
भगवान विष्णु सागरशायी

मन करता है...
मैं उस अगस्त्य-सा पी डालूँ
सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल-वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले आऊँ, फिर इस तट पर
अन्त्येष्टि करूँ; लकड़ी तो
बेहद महँगी है
इस बालू में दफना दूँ
नंगा करके

निर्लज्ज देवता-गण,
ले लेना तुम उसका भी पीताम्बर
अनमोल रेशमी पीताम्बर!
छिप-छिप उसको पहने सुरेश
छिप-छिप उसको पहने कुबेर
छिप-छिप उसको पहनो
फिर तुम सब
एक-एक कर बार-बार

मन करता है...
नंगा होकर मैं खड़ा रहूँ
सागर तट पर
कुछ घंटों तक क्या, जीवन-भर
नंगा होकर-
यों भी क्या कपड़ा मिलता है।

(रचना वर्ष : 1945 ई.)

उनको प्रणाम

जो नहीं हो सके पूर्ण-काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम!

कुछ कुंठित औ' कुछ लक्ष्य-भ्रष्ट
जिनके अभिमंत्रित तीर हुए;
रण की समाप्ति के पहले ही
जो वीर रिक्त तूणीर हुए!
-उनको प्रणाम!

जो छोटी-सी नैया लेकर
उतरे करने को उदधि-पार;
मन की मन में ही रही, स्वयं
हो गए, उसी में निराकार!
-उनको प्रणाम!

जो उच्च शिखर की ओर चढ़े
रह-रह नव-नव उत्साह भरे;
पर कुछ ने ले ली हिम-समाधि
कुछ असफल ही नीचे उतरे!
-उनको प्रणाम!

एकाकी हो अकिंचन हो
जो भू-परिक्रमा को निकले;
हो गए पंगु, प्रति-पद जिनके
इतने अदृष्ट के दाव चले!
-उनको प्रणाम!

कृत-कृत नहीं जो हो पाए;
प्रत्युत फाँसी पर गए झूल
कुछ ही दिन बीते हैं, फिर भी
यह दुनिया जिनको गई भूल!
-उनको प्रणाम!

थी उग्र साधना, पर जिनका
जीवन नाटक दुःखांत हुआ;
था जन्म-काल में सिंह लग्न
पर कुसमय ही देहांत हुआ!
-उनको प्रणाम!

दृढ़ व्रत औ' दुर्दभ साहस के
जो उदाहरण थे मूर्ति-मंत;
पर निरवधि बंदी जीवन ने
जिनकी धुन का कर दिया अंत!
-उनको प्रणाम!

जिनकी सेवाएँ अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहे दूर
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके
कर दिए मनोरथ चूर-चूर।
-उनको प्रणाम!

(रचना वर्ष : 1939 ई.)

सत्य

सत्य को लकवा मार गया है
वह लंबे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात
कोई भी सामने से आए-जाए
सत्य की सूनी निगाहों से वह यों ही देखता रहेगा
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात

सत्य को लकवा मार गया है
गले से ऊपर वाली मशीनरी
पूरी तरह बेकार हो गई है
सोचना बंद, समझना बंद
याद करना बंद, याद रखना बंद
दिमाग की रगों में ज़रा भी हरकत नहीं होती
सत्य को लकवा मार गया है
कौर अंदर डालकर जबड़ों को
झटका देना पड़ता है
तब जाकर खाना गले के अंदर उतरता है
ऊपरवाली मशीनरी पूरी तरह बेकार हो गई है
सत्य को लकवा मार गया है

वह लंबे काठ की तरह पड़ा रहता है
सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात
वह आपका हाथ थामे रहेगा देर तक
वह आपकी बातें सुनता रहेगा देर तक
लेकिन लगेगा नहीं कि उसने
आपको पहचान लिया है
जी नहीं, सत्य आपको बिल्कुल नहीं पहचानेगा
पहचान की उसकी क्षमता हमेशा के लिए
लुप्त हो चुकी है
जी हाँ, सत्य को लकवा मार गया है
उसे इमर्जेन्सी का शाक लगा है
लगता है, अब वह किसी काम का न रहा
जी हाँ, सत्य अब पड़ा रहेगा
लोथ की तरह, स्पंदनशून्य देह की तरह!

(रचना वर्ष : 1975 ई.)

संस्मरण

बाबा नागार्जुन, उनका समय और हम

बाबा नागार्जुन को भावबोध और कविता के मिज़ाज के स्तर पर सबसे अधिक निराला और कबीर के साथ जोड़कर देखा गया है। वैसे, यदि जरा और व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य-परंपरा ही जीवंत रूप में उपस्थित देखी जा सकती है। उनका कवि-व्यक्तित्व कालिदास और विद्यापति जैसे कई कालजयी कवियों के रचना-संसार के गहन अवगाहन, बौद्ध एवं मार्क्सवाद जैसे बहुजनोन्मुख दर्शन के व्यावहारिक अनुगमन तथा सबसे बढ़कर अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोकसंस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित है। उनका 'यात्रीपन' भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती आदि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान भी उनके लिए इसी उद्देश्य में सहायक रहा है। उनका गतिशील, सक्रिय और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में जीवंत रूप से प्रतिध्वनित-प्रतिबिंबित है। नागार्जुन सही अर्थों में भारतीय मिट्टी से बने आधुनिकतम कवि हैं। बाबा नागार्जुन की स्मृतियों को समेटे प्रख्यात समालोचक ***अनूप शुक्ल*** *संस्मरणात्मक आलेख प्रस्तुत है-*

बाबा नागार्जुन से हम पहले-पहल कब मिले थे, यह तो अब ठीक से याद नहीं है। यह निश्चित है कि बचपन और किशोरावस्था के शहर इलाहाबाद और लखनऊ में वह नहीं मिले थे। इलाहाबाद में 'छायावाद के सुकुमार कवि' सुमित्रानंदन पंत थे, अत्यधिक भावप्रवण महादेवी वर्मा थीं, हमेशा खब़रों में रहने वाले उपेन्द्रनाथ 'अश्क' थे, कपड़ों की तरह विचारों में भी स्वच्छ-धवल मार्कण्डेय थे, दिग्गज कथाकार और वैचारिक योद्धा शैलेश मटियानी थे, भाषा के सधे उस्ताद दूधनाथ सिंह थे, नई कविता और आलोचना के सिरमौर डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी थे, अगाध पाण्डित्य के धनी डा. रघुवंश थे, प्रखर आलोचक सत्यप्रकाश मिश्र थे, अनुगीतों से प्रसिद्ध डा. मोहन अवस्थी थे तथा और भी बहुत से महत्वपूर्ण नाम प्रख्यात कथाकार व 'तद्भव' के संपादक अखिलेश, युवा कवि बद्रीनारायण, 'कथ्य रूप' के संपादक अनिल श्रीवास्तव, 'नई कहानी' के संपादक सतीश जमाली, 'अनुगमन' के संपादक हरिशंकर त्रिवेदी 'अज्ञान', युवा साहित्यकार व 'प्रतिज्ञा प्रतीक' के संपादक बालकृष्ण पाण्डेय, विज्ञान लेखक शुकदेव प्रसाद तथा श्रेष्ठ लघुकथाकार नंदल हितैषी जैसे थे, जिनमें कुछ से नियमित, कुछ से प्रायः और कुछ से कभी-कभी मिलना होता था। लखनऊ में तो 'भाषा सुनकर सीखी जाती है' का गुरुमंत्र देने वाले ठेठ और खाँटी कथाकार अमृतलाल नागर का पुरानी पीढ़ी में और अकारण अगाध स्नेह रखने वाले तथा 'राग दरबारी' लिखकर अपना लोहा मनवा चुके श्रीलाल शुक्ल का मँझली पीढ़ी में खासा दबदबा था। लेकिन इलाहाबाद और लखनऊ के इस दबदबे में बाबा नागार्जुन कहीं नहींथे।

सन् 1980 के आसपास जब हमने मसि-कागद छूकर और कलम हाथ में गहकर साहित्य और साहित्यकारों की उद्दाम लहरों के बीच हिन्दी-भवसागर में प्रवेश किया , तब बाबा नागार्जुन का नाम कविता का एक सुपरिचित नाम था, प्रगतिशील कविता की त्रयी नागार्जुन-केदार-त्रिलोचन में नागार्जुन का क्रम प्रथम है, लेकिन हमने महसूस किया कि इलाहाबाद और लखनऊ के साहित्य जगत में हिन्दी की प्रगतिशील परम्परा पर मुख्यतः गद्यकारों का कब्ज़ा था औरबा नागार्जुन को मुख्यधारा का कवि या साहित्यकार माने जाने पर किंचित मतभेद देखने को मिलता था। इसका एक कारण सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का समकालीन हिन्दी कविता पर खास तौर से और समूचे हिन्दी साहित्य पर आम तौर से वर्चस्व था , जिसे विरोध के मुखर अथवा मौन स्वरों के बावजूद कोई बड़ी चुनौती नहीं मिल रही थी।

इस बीच राष्ट्रीय स्तर पर 'जनवादी लेखक संघ' के गठन की प्रक्रिया तेज होने लगी थी। भैरव प्रसाद गुप्त ज ले स के मुखिया थे, अध्यक्ष थे। उपाध्यक्ष के रूप में दूसरी पंक्ति के साहित्यिक नेताओं ने लेखकों के इस संगठन पर अपना वर्चस्व जमाया हुआ था। उनमें प्रख्यात कथाकार राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय से लेकर इसराइल तक कई महत्वपूर्ण नाम थे। उस समय के प्रायः सभी महत्वपूर्ण लेखक ज ले स से जुड़े थे। लेकिन नहीं जुड़े थे, तो बाबा नागार्जुन। बाबा प्रगतिशील लेखक थे। प्रगतिशीलता और जनवाद पर विवाद था। प्रश्न पूछा जाता था कि जनवाद प्रगतिशीलता का विस्तार है या उसकी समानान्तर विचारधारा ? क्या जनवाद की साहित्य में अलग से कोई परंपरा है ? कैसे तय होगा कि कौन सा लेखक प्रगतिशील है और कौन सा जनवादी ? अक्सर ऐसे प्रश्न जनवादी आन्दोलन को परेशान करने के लिए पूछे जाते थे, क्योंकि प्रश्न पूछने वाले और उत्तर देने की सामर्थ्य रखने वाले दोनों यह जानते थे कि प्रगतिशीलता

और जनवाद में बिरादराना रिश्ता था, और बहुत दूर तक उनमें अलगाव संभव नहीं था। इसलिए कुछ समय बाद 'प्रगतिशील-जनवादी' शब्दबंध का एक साथ व्यवहार होने लगा।

वस्तुतः बाबा नागार्जुन हिन्दी की प्रगतिशील-जनवादी काव्य परंपरा के शीर्षस्थ कवि थे। मैथिली, संस्कृत, पालि, अर्धमागधी, अपभ्रंश, सिंहली, तिब्बती, मराठी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी, सिंधी आदि दर्जनों भाषाओं और उन भाषाओं में रचे गए साहित्य के गहन जानकार थे। इस मामले में वह महापंडित राहुल सांकृत्यायन के सही अर्थों में अनुज गुरूभाई थे। बाबा का गद्य भी कम ताकतवर नहीं है। वह कम्यूनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य थे, बाद में बिहार में जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन में 'रेणु' के साथ जेल जाने वाले साहित्यकारों में बाबा अग्रणी बने। उनकी उपलब्धियों की गणना नहीं की जा सकती। लेकिन उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि अपने व्यक्तित्व और कृतित्व में असाधारण होते हुए भी वह नितांत साधारण और सहज थे।

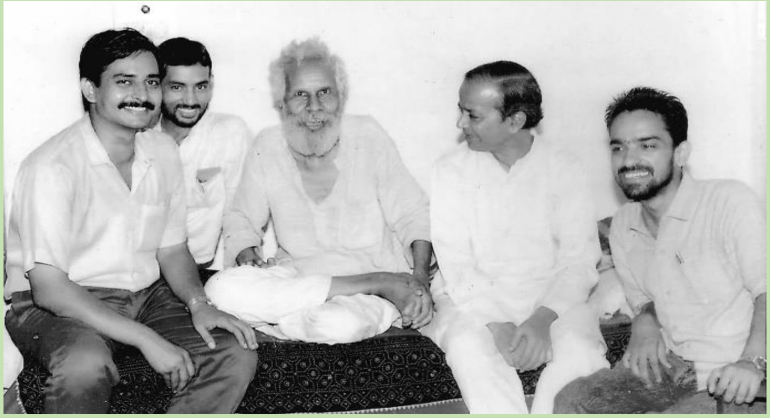

बाबा नागार्जुन से हमारी पहली मुलाकात कब हुई, यह तो अब स्मृति में नहीं है, लेकिन 1984-85 के दौरान दिल्ली की गोष्ठियों में उन्हें देखने और उनसे बात करने, उनका सामीप्य हासिल करने की इच्छा का तुष्टीकरण होना शुरू हो गया था और बहुत शीघ्र हम भी उस विराट साहित्यिक कुटुम्ब के उन थोड़े से लोगों में शुमार हो गए थे, जिन्हें बाबा नागार्जुन नाम से जानते और शक्ल से पहचानते थे । काफी हाउस हो या मंडी हाउस, कांस्टीट्यूशन क्लब हो या कनाट प्लेस में मद्रास होटल के पीछे कवि ब्रजमोहन की न जाने किस चीज की दुकान , जहाँ हर शाम पीने और मिलने वाले साहित्यकारों का जमघट लगता था, बाबा कहीं भी मिल जाते। अपने दल-बल के साथ। ज्यादातर युवा कवि-लेखकों से घिरे हुए। मिलने पर सिर से सिर मिला देते और दाढ़ी पर हाथ लगाकर पूछते- ''क्या लिख रहे हो ?'' उन दिनों हम लोग फ्रीलांस लेखन में व्यस्त थे। लिखना साहित्यिक भी होता था और अखबारी भी। दिल्ली का कोई ऐसा राष्ट्रीय, व्यावसयिक या साहित्यिक पत्र ऐसा नहीं था, जिसमें निरन्तर लेखन-प्रकाशन न होता हो। चूँकि लिखने के पीछे यश के साथ-साथ जीवन के लिए अपरिहार्य धन अर्जन का भी उद्देश्य अंतर्निहित रहता था, इसलिए लिखे को सपारिश्रमिक छपवाना विवशता थी। दिल्ली में पत्र-पत्रिकाओं की कमी नहीं थी और काम करने वाले के लिए अगाध काम था। बाबा नागार्जुन हर पत्र-पत्रिका में छपने वाली रचनाओं और रचनाकारों पर पूरी और पैनी नज़र रखते थे। बहुत पढ़ते थे, और काफी कुछ उन्हें जबानी याद रहता था। कभी प्रकाशन में व्यवधान देखते तो टोकने में एक क्षण नहीं - ''कुछ दिख नहीं रहा ?'' कभी-कभी अगले प्रश्न के साथ तुकबंदी जैसा जोड़ देते- ''कुछ लिख नहीं रहा ?'' .... और हम उन्हें समझाने, या कहें कि संतुष्ट करने के असफल प्रयास में जुट जाते कि- क्या लिख रहा हूँ और कहाँ लिख रहा हूँ .... और अंत में बाबा से कुछ सुनाने का आग्रह, जिसे वह बिना अतिरिक्त आग्रह के मान लेते।

बाबा को हमने बैद्यनाथ मिश्र या मैथिली लेखक 'यात्री' के रूप में नहीं जाना, उन्हें जब जाना तो बाबा के रूप में। उनके कृतित्व को समग्रता में बाद में जाना। उनके व्यक्तित्व की समग्रता को जानने का प्रयास पहले किया। यह स्वीकारने में हमें कोई संकोच नहीं है कि वह हमेशा हमारे लिए सम्मान और आत्मीयता के साथ 'कौतूहल' का विषय बने रहे। इससे पहले अज्ञेय से लेकर पंत तक तथा शैलेश मटियानी से लेकर श्रीलाल शुक्ल तक जितने साहित्यकारों के दीदा-दर्शन हुए, उनमें कोई इतना अव्यवस्थित या बेतरतीब नहीं था। सबके साथ एक प्रकार का अभिजात्य' जुड़ा था, लेकिन बाबा नागार्जुन ! .... इतना साधारण व्यक्तित्व - बेतरतीब बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, कई दिनों से लगातार पहने जा रहे कपड़े जिन्हें एक के ऊपर एक पहन लिया गया है, मुचा हुआ पायजामा, श्वांस में

सुवास नहीं है, हाथ-पैर की चमड़ी पर चिकनापन नहीं है, मैल की कालिमा जैसी प्रतीत होती है, पास में रखा हुआ एक झोला जिसमें न जाने कितनी भाषाओं की पुस्तकें-पत्रिकाएँ और उन्हें पढ़ने के लिए अत्यंत कमजोर नजर का सहारा- मैग्नीफाइंग ग्लास.... और ऐसे व्यक्तित्व को ओढ़े हुए वह कालिदास जैसे अभिजात्य नाटककार के माध्यम से सर्जक और पात्र का विभेद समाप्त कर देते हैं-

''कालिदास, सच-सच बतलाना!
इन्दुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे ?
कालिदास, सच-सच बतलाना!''

असल में बाबा के व्यक्तित्व की बानगी उनकी आन्दोलनधर्मी रचनाओं में अधिक देखने को मिलती है। उनके व्यक्तित्व का देसीपन, उनकी विचारधारा को समय के अनुरूप परिवर्तित तो करता है, उसे भटकने नहीं देता। 'तर्पण' कविता में वह राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का खून बहाने वाले को 'मराठा हिन्दू', मूर्ख या पागल कहने की बजाय मानवता का महाशत्रु, हिरण्यकशिपु, अहिरावण, दसकंधर और सहस्रबाहु जैसे संबोधनों से संबोधित करते हैं।

'अकाल और उसके बाद' कविता में बाबा ने अकाल का जो वर्णन किया है , इतने कम शब्दों में अन्यत्र दुर्लभ है-

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त''

इसी तरह जब वह 'शासन की बंदूक' को अपने निशाने पर लेते हैं, तो अंदाजे-बयाँ अद्भुत है-

''जली ठूंठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक''

बाबा नागार्जुन अपनी कविता में लोकजीवन से रूप, रस और ऊर्जा प्राप्त करते हैं और कविता में जस का तस प्रस्तुत कर देते हैं। इसीलिए कई बार बाबा की कविता में सपाटबयानी या इतिवृत्तात्मकता का आरोपण प्रतीत होने लगता है, लेकिन वस्तुतः यह उनकी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता, पक्षधरता, मुखरता और सबसे बढ़कर उनके व्यक्तित्व की साधारणता ही है, जो 'कविता की कला' को जनसाधारण के अनुकूल बनाती है।

बाबा नागार्जुन से मिलने का क्रम जो पहले विरल था, वह अब धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। बीसवीं शताब्दी के नौवें दशक के मध्य में हिन्दी के बहुचर्चित कथाकार व विचारक, वर्तमान साहित्य के संपादक और महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति विभूति नारायण राय, भारतीय पुलिस सेवा के अंतर्गत गाजियाबाद के पुलिस अधीक्षक थे। उनके यहाँ लेखकों-साहित्यकारों का आना-जाना लगा रहता था। संयोगवश हम उन दिनों 'वर्तमान साहित्य' के लेखक ही नहीं, उसके प्रथम पुरस्कार अंक का 'कृष्ण प्रताप स्मृति पुरस्कार' से सम्मानित कहानीकार भी थे। 'वर्तमान साहित्य' के संपादक के नाते और एक महत्वपूर्ण लेखक के रूप में अक्सर विभूति नारायण राय के यहाँ आना-जाना होता था। ऐसे ही किसी आवागमन में जब एक बार हम हिन्दी के बहुचर्चित कहानीकार व ग़ज़लकार ज्ञानप्रकाश विवेक तथा महत्वपूर्ण कवि-कहानीकार कमलेश भट्ट 'कमल' के साथ उनके यहाँ पहुँचे , तो उनकी बैठक में बाबा पसरे मिले। एकदम अनौपचारिक। खासे मुखर और परम आत्मीय। किसी ने हमारा परिचय कराना चाहा तो एकदम रोक दिया- ''अब ये परिचय के मोहताज नहीं हैं।''

अब सोचता हूँ तो लगता है कि बाबा नागार्जुन के ये वाक्य सामान्य शब्द समूह नहीं हैं। यह एक वरिष्ठ साहित्यकार का किसी नये या युवा लेखक को दिया गया वह प्रमाणपत्र है, जिसकी लालसा हर लेखक के मन में होती है। बाद में जब उच्चतर शिक्षा हेतु जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली के भारतीय भाषा केन्द्र में गुरूजनों डा. नामवर सिंह, डा. केदारनाथ सिंह और डा. मैनेजर पाण्डेय के सान्निध्य लाभ का सुअवसर प्राप्त हुआ, तब एक और बड़ा लाभ मुझे मिला- बाबा से मिलन

की बारम्बारता में अत्यधिक वृद्धि और उनका भरपूर सान्निध्य।

बाबा की जीवनशैली से परिचित जानते हैं कि बाबा रमता जोगी बहता पानी थे। एक जगह कम रहते थे। बैद्यनाथ मिश्र में घुमक्कड़ी का जो बीजारोपण राहुल जी के साथ हुआ था, वह बाबा नागार्जुन के साथ जीवन भर रहा। हिन्दी के बहुत सारे नये-पुराने कवि-साहित्यकार बाबा के अपने थे। उनका घर उनका अपना था। रिश्तेदारी में कम रुकते थे, साहित्यकारी में अधिक रुकते थे। जे.एन.यू. में डा. मैनेजर पाण्डेय के यहाँ उनका नियमित आना-जाना था। कई-कई दिन रुकते। हम लोगों को खब़र लगती तो साहित्यिक मित्रों का जमावड़ा लग जाता। कथाकार व आलोचक देवेन्द्र चौबे उन दिनों चीनी और फ्रांसीसी साहित्य पर काम कर रहे थे। उनके साथ कभी-कभी चीनी छात्र आ जाते। एक इतालवी लड़की और कोरिया के कुछ छात्र थे। कई देशों के शोधकर्ता जेएनयू में रहकर शोध करते हैं। उनमें से अधिकांश डा. मैनेजर पाण्डेय जैसे विद्वानों के निकट संपर्क में रहते थे। वे सब, अन्य अनुशासनों के लोग, आन्दोलनधर्मी राजनीति से जुड़े हुए और हिन्दी के जिज्ञासु- कुल मिलाकर बाबा के आगमन पर डा. मैनेजर पाण्डेय के यहाँ अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो जाती। बाबा के होने का एक लाभ यह मिलता था कि 'गुरुकुलीय-अनुशासन' में हम लोग स्वतन्त्रता का मजा लेने लगते थे और वार्ता में थोड़ा अनौपचारिक हो जाते थे। बाबा के समक्ष किसी किस्म के श्रेणीक्रम का कोई स्थान नहीं था।

एक बार बाबा जेएनयू कैम्पस आ गए, फिर वह हम लोगों के लिए सहज सुलभ थे। उन्हें साथ लेकर आप अरावली हिल्स में घूमिए, छात्रावास में ले जाइए, कमरे में या किसी ढाबे पर मीटिंग जमाइए- उम्र का, ज्ञान का, अनुभव का हर फर्क मिट जाता था। बाद में तो बाबा खुद ही हास्टल का रास्ता पूछते चले आते थे। सन् 1997 तक, जब तक दिल्ली में रहा, बाबा पास हों या न हों, शहर में हों या न हों, उनका होना हमेशा महसूस होता था। वह एक ऐसा दरख्त थे, जिसके साये में धूप नहीं लगती थी; लेकिन ऊर्जा का संचार भरपूर होता था। बाबा के साथ हमेशा रहने वाला मैग्नीफाइंग ग्लास केवल छोटे अक्षरों को बड़ा करता था, लेकिन बाबा के व्यक्तित्व का प्रेम और अपनापा हम सबको बड़प्पन से भर देता था। उनके साथ रहकर कोई अपने को छोटा या कमजोर नहीं समझता था। अक्षर का आकार कई गुना बढ़ जाता था। यह उनके व्यक्तित्व का ही करिश्मा था कि कपड़े मैले-कुचैले, बाना सूफियाना या फकीराना, श्वांस बासित और थूके हुए बलगम का कुछ हिस्सा दाढ़ी में अटके होने के बावजूद आपको उन पर असीम प्यार आएगा और बाबा जैसे हैं, आप उनको उसी रूप में स्वीकारेंगे। यद्यपि 'दधीचि निराला' नामक कविता में ये पंक्तियां बाबा ने निराला के लिए लिखी हैं, लेकिन स्वयं बाबा नागार्जुन के लिए सर्वथा सटीक बैठती हैं-

"हे कवि-कुल-गुरू, हे महिमामय, हे सन्यासी
तुम्हें समझता है साधारण भारतवासी
राज्यपाल या राष्ट्रप्रमुख क्या समझें तुमको
कुचल रहीं जिनकी संगीनें कुसुम को
इस मिट्टी का कण-कण, सुनो,
गीत तुम्हारे गा रहा
सुखमय, कृतज्ञ, समदृष्टि
यह जनयुग जल्दी आ रहा"

अनूप शुक्ल
अध्यक्ष, शब्द संस्कृति मंच, फतेहपुर (उत्तर प्रदेश)
anupshukla17@gmail.com

पं. विष्णुकांत शास्त्री

जन्म : 2 मई 1929, कलकत्ता।
शिक्षा : एम. ए., एल-एल. बी.।
वृत्ति : 1953 से कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक से आचार्य के पद से मई 1994 को अवकाश ग्रहण।
मौलिक कृतियाँ : कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध, कुछ चंदन की कुछ कपूर की, चिन्तन मुद्रा, अनुचिन्तन (साहित्य समीक्षा), तुलसी के हिय हेरि (तुलसी केन्द्रित निबन्ध), बांग्लादेश के सन्दर्भ में (रिपोर्ताज), स्मरण को पाथेय बनने दो, सुधियाँ उस चन्दन के वन की (संस्मरण एवं यात्रा वृत्तान्त), अनंत पथ के यात्री: धर्मवीर ' भारती (संस्मरण), भक्ति और शरणागति (विवेचन), शान और कर्म (ईशावास्य प्रवचन), जीवन पथ पर चलते- चलते (काव्य)।
गतिविधियाँ : देश-विदेश की विविध साहित्यिक संस्थाओं में व्याख्यान, विविध साहित्यिक सम्मानों एवं पुरस्कारों से समादृत। 1944 से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बद्ध, 1977 से सक्रिय राजनीति में प्रवेश । जनता पार्टी के सदस्य के रूप में पश्चिम बंगाल विधानसभा में विधायक (1977 - 1982), पं. बंगाल प्रदेश भाजपा के दो बार अध्यक्ष, भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष (1988 - 1993), संसद सदस्य-राज्यसभा (1992 से 1998), 2 दिसम्बर 1999 को हिमालय प्रदेश के राज्यपाल नियुक्त, 24 नवम्बर 2000 से उत्तर प्रदेश के राज्यपाल।
निधन : 17 अप्रैल 2005 को ट्रेन में हृदयगति रुकने से।

हिन्दी के आलोचना के मशहूर हस्ताक्षर रहे हिन्दुत्ववादी आलोचक विष्णुकांत शास्त्री ने राजनीति, साहित्य और समाज को अपना जीवन लक्ष्य बनाते हुए एक सहृदयी शिक्षक के रूप में भी अपनी विशेष पहचान स्थापित की। 'सृजन के आयाम' शीर्षक से प्रकाश त्रिपाठी द्वारा संपादित कृति में संग्रहीत विष्णुकांत शास्त्री कृत- 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद : आधुनिक युग में सांस्कृतिक प्रवाह' विषयक आलोचनात्मक आलेख का अंश प्रस्तुत है-

"आधुनिक काल का इतिहास तो अधिक ज्ञात है, अतः उसकी चर्चा संक्षेप में ही करना चाहता हूँ। 1857 में अंग्रेजों के विरुद्ध छेड़े गये प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पूर्व जनसंघर्ष की चेतना जगाने के लिए रोटी के साथ साथ कमल को प्रतीक के रूप में चुनना , हमारी सांस्कृतिक चेतना के कारण ही संभव हो सका था। इस संग्राम में कंधे से कंधा मिलाकर हिंदू और मुसलमान अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने के लिए लड़े थे। दुर्भाग्य से इस स्वातंत्र्यसमर के विफल होने के बाद जनता में व्यापक हताशा फैल गयी। राष्ट्र को इस हताशा से उबारने के लिए पुनः एक बार हमारी सांस्कृतिक चेतना ही सक्रिय हुई।

राजा राममोहन राय, श्री रामकृष्ण परमहंसदेव , स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री अरविन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि महान पुरुषों ने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को उभार कर और विकृतियों को नकार कर पुनः देश में नवजीवन का संचार किया। यह ऐतिहासिक तथ्य स्मरणीय है कि श्रीमद्भगवद्गीता इस काल की सर्वाधिक प्रेरक पुस्तक रही । ऋषि बंकिम, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी, विनोबाभावे, डॉ राधाकृष्णन् तथा अन्यान्य मनीषियों ने गीता से प्रेरणा लेकर जनजागरण अभियान चलाया था। सशस्त्र क्रान्तिकारी और अहिंसक सत्याग्रही दोनों प्रकार के योद्धाओं के लिए गीता परम सम्बल थी। इस सांस्कृतिक जागरण का एक सुफल यह भी हुआ कि पाश्चात्य ज्ञान - विज्ञान और जीवन मूल्यों के अन्ध अनुकरण या अन्धवर्जन के अतिरेकों से मुक्त होकर भारतीय प्रबुद्घ चित्त ने भारतीय और पाश्चात्य ज्ञान - विज्ञान आदि के स्वस्थ समन्वय पर बल दिया।

इस सांस्कृतिक जागरण की फलश्रुति ही थे भारतीय स्वाधीनता के सहिंस और अहिंस आन्दोलन। आरम्भ में इन आन्दोलनों को सभी भारतीयों का समर्थन प्राप्त था, किन्तु कालान्तर में अंग्रेजों की कूटनीति के कारण कट्टरपंथी मुसलमान इनसे कटते गए। दुर्भाग्य की बात है कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' लिखने वाले अल्लामा इक़बाल ने पाकिस्तान का बीजारोपण किया और एक समय के हिन्दू मुस्लिम एकता के समर्थक, नरमपंथी नेता कायदे आजम जिन्ना अंग्रेजों की कूटनीति को सफल करते हुए पाकिस्तान के जनक बने। मजहब के आधार पर जिस पाकिस्तान की नींव कितनी खोखली थी। बचे-खुचे पाकिस्तान में भी पंजाब, सिन्धी, बलूच, पख्तून, मुजाहिर के भेद उग्र होते जा रहे हैं। मुजाहिरों के नेता अल्ताफ हुसेन ने तो साफ-साफ कह दिया है कि पाकिस्तान का निर्माण ऐतिहासिक भूल थी। इसीलिए उसने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' फिर से गाना शुरू कर दिया है। इससे यही शिक्षा लेनी चाहिए कि उपासना पद्धति एवं सामाजिक रीति नीति की भिन्नताओं के बावजूद साझी भारतीय सांस्कृतिक चेतना को हम लोग और दृढ़ करें। यह याद रखें कि स्वाधीनता संग्राम में भी और स्वाधीन भारत के विकास में भी सभी धर्मावलम्बी भारतीयों का योगदान रहा है। आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति एकरूपता की नहीं, अन्तर्निहित एकता की पक्षधर रही है। अपनी ऐतिहासिक परम्परा के उज्ज्वल पक्षों श्रृद्धा , मातृभूमि के प्रति निष्ठा, रूप में स्वस्थ परिवर्तनों को स्वीकारते हुए भी स्वरूप की निरन्तरता का बोध, विचार स्वातंत्र्य, विविध उपासना पद्धतियों, भाषाओं, सामाजिक एवं क्षेत्रीय विशिष्टताओं के प्रति सद्भाव हमारी सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख पक्ष रहे हैं। मध्ययुग में राजनीति की उपेक्षा करने का भरपूर दंड हम लोग भोग चुके हैं। अतः अब राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रति भी पूर्णतः सजग रहना होगा। खासकर इस बात का ध्यान रखना होगा कि देश में बलिष्ठ राज्यों के साथ साथ केंद्र भी भरपूर बलिष्ठ हो जिससे हमारी सीमाओं पर कारगिल के सदृश अनुप्रवेश करने का दुस्साहस करने वालों को उचित सबक सिखाया जा सके।

सामाजिक नहीं एकात्म भारतीय संस्कृति- अपना व्याख्यान समाप्त करने से पूर्व एक और बात की ओर आप लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसकी संस्कृति ने दूसरे देशों की संस्कृतियों से आदान-प्रदान न किया हो। आधुनिक युग में तो यह प्रक्रिया और तेज हो गयी है जो अपनी संस्कृति को सामासिक संस्कृति कहता हो। अतः हमें भी अकुंठ चित्त से अपने देश की संस्कृति को सीधे सीधे भारतीय संस्कृति ही कहना चाहिए।"

ऐसा लगता है, मैं दुल्हन हूँ बनी!

विष्णुकांत शास्त्री अपने व्यवहार और आचरण में भी अत्यंत सौम्य और उदार थे, किन्तु वैचारिक दृढ़ता में संघ की विचारधारा के प्रति पूर्ण आस्थावान। शास्त्री जी बहुत उच्च कोटि के शिक्षक थे। राजनीति में रहते हुए भी उनके भीतर राजनीति के छल-प्रपंच, झूठ-फरेब आदि अवगुण नहीं थे। राज्यसभा के सदस्य रहते हुए अनेक बार वे दिल्ली से कोलकाता हवाई अड्डे पर आते और वहाँ से सीधे विश्वविद्यालय में अपनी कक्षा में होते। 'राम जी की कृपा से' कहकर वे अपने प्रत्येक कार्य 'राम' पर छोड़ देते थे और स्वयं को निमित्त मात्र मानते थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। अपने विरोधी विचारधारा के कवि नागार्जुन की भी दर्जनों कविताएं उन्हें याद थीं। विष्णुकांत शास्त्री की स्मृतियों को अंतर्मन में सँजोये **डॉ. ऋचा द्विवेदी** का संस्मरणात्मक-आलेख दर्शनीय है-

जैसा कि विद्वतजन ने भी विद्या को सभी आभूषणों में श्रेष्ठ कहा है- 'विद्यालंकारः सर्व धनं प्रधानम् आभूषणं।' जिसने विद्या को हृदय से आत्मसात कर लिया, उसने सब पा लिया। आप सोच रहे होंगे दीक्षांत समारोह का दुल्हन से क्या सम्बन्ध है। है, घनिष्ठ है। अगर माना जाये तो। आज, इस 19 नवम्बर, 2016 के दीक्षांत समारोह में अपने विश्वविद्यालय के कुलपति मुशाहिद हुसैन और उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रामनाईक जी के कर-कमलों से पीएचडी की उपाधि लेते हुए, मुझे ऐसा ही लगा। जैसे मैं आज सचमुच ही दुल्हन सी लद गयी, सज गयी।

सफेद साड़ी, लाल सुनहरी किनारी, सुर्खलाल रंग की गले में पट्टिका जिस पर अपने वि का नाम और दीक्षांत समारोह चिन्हित था। सभी विद्वत गुरुजन अपने आशीष वचनामृत रूपी पुष्प वर्षा करते हुए, उनके आशीर्वचन किसी वेद मंत्र से कम पवित्र व आनन्दमय नहीं थे। पूरा का पूरा पांडाल पुष्पों से सजा हुआ। सच में, सजावट किसी विवाहोत्सव से कम तो नहीं थी। हृदय में अपूर्व अभूतपूर्व आनन्द की सृष्टि हो रही थी। लाल मखमली कालीन, जिस पथ पर चलकर उपाधि लेने हेतु जाना था। मंच हर प्रकार से सुसज्जित व नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित था। जहाँ सभी विद्वतजन आसीन थे। अपने अपने क्रम से आशीर्वचन रूपी वेदमंत्रों को प्रस्तुत करने के लिए। तो बताइए, ये वातावरण क्या किसी विवाहोत्सव से कम था भला। मुझे तो सच में ये मेरा विवाह ही लगा। विवाह मंत्र भी नहीं होते। यहाँ तो जैसे विद्वतजन केवल देने ही आये हैं। जैसे फलों से लदा वृक्ष, कल कल करती स्रोतस्विनी, ये सभी औरों को ही तो देते हैं। वास्तव में, देने में जो आनन्द है वह ग्रहण करने में नहीं।

दीक्षांत समारोह हो और मुझे आदरणीय आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी याद न आये, ये भला कैसे सम्भव है। बात सन् 2001की है उस समय दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई में दीक्षांत समारोह होना था। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी, पापा जी की मित्रता लगभग 40 वर्ष पुरानी थी। पापा जी और आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी ने राष्ट्रधर्म पत्रिका में साथ साथ काम किया था। पापा जी के बिस्तर ठीक करते समय एक अतिगोपनीय चिठ्ठी हाथ में आती है, जिसमें आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी के दीक्षांत समारोह में शामिल होने की सूचना थी। पत्र देखकर मैंने चुपचाप रख दिया। पापा जी से केवल इतना कहा- 'शास्त्री चाचा जी आ रहे हैं। वह मुस्कुराकर बोले- 'हाँ।' और उनको हेलीपेड लेने के लिए निकल लिए। उसके साथ ही अन्य स्मृतियाँ भी मानस में कौंध गयीं।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री जी, जिन्हें चाचा जी कहती थी। बिलकुल सादगी से भरपूर, आडम्बरहीन , विराट व्यक्तित्व, बच्चों संग बच्चे बन जाते थे। आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का जीवन जितना विविधता से परिपूर्ण है, उनका व्यक्तित्व उतना ही मोहक व आकर्षक है। उनका शारीरिक व्यक्तित्व अत्यंत गरिमा मंडित और

तेजोदीप्त था। अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता के कारण वे भीड़ में भी पहचाने जा सकते थे । 6 फीट की लम्बाई वाले इकहरे शरीर में उनका गौर-वर्ण, हँसमुख चेहरा, सौम्यता संस्कारशीलता को समेटे हुए, अनन्त स्नेह का समुद्र जिसमें हिलोरे ले रहा हो। मुखमण्डल की आभा और आत्मीयता बरबस लोगों को आकर्षित कर लेती । उनका हृदय अत्यंत सरल, उनसे मिलने वाले जल्द ही उनके स्नेह, सद्भाव और सौहार्द के कायल हो जाते। बिहारी के शब्दों में- "वै चितवन औरे कछू जिंहि बस होत सुजान।"

इधर मैं कालेज जाने की तैयारी करने लगी। सोचा इतने दिनों बाद मिलूँगी तो उन्हें अपनी एक पेंटिंग उपहार स्वरूप देने की सोची। इधर कालेज पूरी तरह से सजा-धजा और आज के मुख्य अतिथि का इंतजार हो रहा था। मैं आगे से दूसरी पंक्ति में बैठकर उनके आने का इंतजार करने लगी। लगभग आधे घंटे बाद वह आये। उनकी पोशाक बिलकुल सादी... साल के बारहों महीने वे शुभ्र धोती कुर्ते में देखे जा सकते थे। उनका स्वच्छ परिधान उनके व्यक्तित्व को भव्यता और पारम्परिकता प्रदान करता। उनके सुंदर सौम्य मुख को देखकर आत्मीयता का अनुभव होता और व्यवहार को परखकर सम्मान सहयोग का भाव जागता। उनके हृदय में बड़ों के प्रति श्रद्धा, समवयस्कों के प्रति स्नेह तथा छोटों के प्रति प्यार रहता। ये गुण उनके व्यवहार से झलकते। गूढ़ से गूढ़ साहित्यिक विषय को शास्त्री जी अपनी वाणी से सहज, स्पष्ट और बोधगम्य बनाने की क्षमता रखते।

आज उन्होंने सफेद धोती कुर्ता और लाल रंग का सनील का गाउन और टोपी पहन रखी थी। आज तो उनकी छवि वास्तव में अभिराममय थी। जब उनका व्याख्यान समाप्त होने वाला था, तो जो पेंटिंग हम लाये थे वह हर हाल में उन तक पहुँचाना ही था। समय कम था, मैंने उनके सुरक्षा गार्ड को लिखकर दिया कि यह चिट्ठी मंच तक पहुँचाने का कष्ट करें। पापा जी तो खुद मंच पर थे, यहाँ मैं एक छात्रा थी। थोड़ी देर में गार्ड आकर बोला- 'जब वह मंच से उतरें तो आप जो देना चाहती हैं दे दीजिएगा।' अब मैं इंतज़ार करने लगी, दीक्षांत समारोह के समापन की। वैसे भी 18-19 वर्ष की उम्र में कुछ जोश भी ज्यादा था। जैसे ही वह सीढ़ियों से उतरने लगे तो मैं उनके सुरक्षा घेरे को तोड़कर आगे बढ़ गई। चार गार्ड थे, एक ने रोकना चाहा। वह स्वयं ही बोल पड़े- 'अरे अपनी बच्ची है।' मैंने उनको पेंटिंग उपहार स्वरूप दी। बिटिया मानते थे, सो पैर नहीं छुआए। मेरे सिर पर हाथ फेरकर पूछते रहे कि क्या पढ़ रही हो ?

'अच्छा, तुम्हारे नाम का अर्थ क्या है ?'

मैंने कहा- 'वेद में जो मंत्र हैं, उन्हें ऋचा कहते हैं।'

फिर वह लखनऊ की बहुत सी बातें बताते रहे, बोले- 'मेरी द्योति का नाम भी ऋचा है।'

बहुत सी बातें! वह पल मेरे लिए अविस्मरणीय है। गुनगुनी धूप से सुनहले और चाँद की चाँदी से रुपहले।

उसके बाद उन्हें कहीं और भी जाना था। सो पापा, मैं और शास्त्री जी वहाँ गए। उस दिन पूरा समय मैं, पापा उनके साथ ही रहे। वह दिन मेरी अमूल्य निधि है। तब उपाधि का उतना मूल्य नहीं समझती थी, अल्हड़ थी। आज, वास्तव में इसकी कीमत समझ आ रही है। शिक्षा का अमूल्य गहना जो मेरे पिता ने मुझे दिया है, वह अनुपम है, वही मेरा स्त्रीधन है, सबकुछ है। आज मैं खुद को सम्पूर्ण महसूस कर रही हूँ। सच, उस दिन मैं दुल्हन सी सज गई!

डॉ. ऋचा द्विवेदी
richashastri66@gmail.com

कौन रोक सकता है

वह शून्य
जो स्थापित हो गया है
मेरे और तुम्हारे बीच
दिया है जिसने स्थान दूरियों को
अब उसे शायद मशीन ही भर पाए

क्योंकि वह इन्सान नहीं है
उसे हवा की खुशबू से बिगड़ने का खतरा भी नहीं है
मनुष्य के सम्पर्क से संक्रमण का भय भी नहीं है
शायद इसीलिए चलन में है 'वर्क फ्रॉम होम'
कारगर भी
हो सकता है यह नुस्खा
हमारी ज़िन्दगी को बचाए रखने में कामयाब साबित हो

जानते हो!
मज़बूरियाँ ज़िन्दगी में ज़ल्दी खत्म नहीं होतीं
जो बन रही हैं आज मेरी और तुम्हारी आदतों की वज़ह
चलती रहेंगी संग मीलोंमील

बेशक!
मशीनों को लगाया जाएगा
मेरे और तुम्हारे बीच की खाई पाटने में
पर इतना याद रहे मित्र
मशीनें मनुष्य की सहचर कभी नहीं हो सकती
हाँ प्रतिस्थाक ज़रूर
मगर फिर भी
होना होगा हमें मजबूत
उतरने को इनके संग प्रतिस्पर्धा में
और बनाना होगा आत्मीयता से इन्हें
अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा

इसके संग संग संस्कृति के तमाम
सरोकार
साथ खेले जाने वाले खेल
मिलकर गाए जाने वाले गीत
फैलकर किए जाने वाले भोज
सिकुड़ने पर हो जाएंगे मजबूर

कहीं आर्टिफिशल इंटेलिजेंस के चलते
हम मनपसन्द मनोरंजन से ऊब तो न
जाँएगे ?
या फिर वर्तमान धकेल तो न देगा
दुनिया की एक बड़ी भीड़ को
अनिश्चितता के समंदर में ?

कल चाहे कुछ भी हो
मगर हालात के अंधकार में
आशा के दीप जलाना
मनुष्य की पहली प्राथमिकता है

हाँ आज की तस्वीर
वायरस की भेंट ज़रूर हो सकती है
पर इसे संवेदनाओं से संवारने में
हमें कौन रोक सकता है ?

ममता जयंत
सहायक अध्यापिका, मयूर विहार दिल्ली – 110 096
mamtajayant21@gmail.com

कविता

इमरोज़ होना कायरता नहीं है

मुझे इमरोज़ होने में कभी कोई आपत्ति नहीं रही
लेकिन मैं चाहता था कि मेरे भीतर के साहिर को
महसूस कर सको तुम
इसलिये तुम्हारे पैरों तले शायरी
और धड़कनों में सिगरेट की कश छोड़ जाता था।

हमारा रिश्ता उस सिगरेट की तरह रहा
जिसे कभी ठीक से तुम सुलगा ही नहीं पायी
और मैं उसकी हर कश में ख़्वाबों के ईट जोड़ता रहा।

जो रिश्ता सदी का सबसे खूबसूरत चाँद था
हमारे मिलने से भी बहुत पहले से
लेकिन हम उसे आसमां कभी दे न सके
तुम कोहरे और बादलों को कोसती रही
और मैं रात रात भर टिमटिमाते जुगनूओं के धुएं पीता रहा।

मेरी नज़्मों में खांसते देखता हूँ जब भी तुम्हें
जी करता है होंठ बदल लूं तुमसे
मेरे होंठों से गुनगुनाओ ख़ुद को।
गर मेरी आँखों से देखो
तो महसूस करोगी
कि तुमसे अधिक खूबसूरत कविता
कभी नहीं रची गयी और न रची जाएगी
क्यूंकि ईश्वर की वो सियाही चुराकर
तुम्हारे दाएं सीने में दफ़्न कर दिया था मैंने
'तिल' कहते हैं जिसे।
यही 'तिल' वो ट्रैफ़िक सिग्नल है
जहाँ से जीने की चार दिशाएं खुलती है
मैं जिस किसी रास्ते से चलूं
तुम्हारी ख़ामोशी पे आके खत्म होता हूँ।

गर दिल खोलकर बातें करो मुझसे
तो मेरी उम्र बढ़े शौर्य बढ़े
गर रूठती हो तो लगता है जैसे
मर रहा हूँ एक कायर की मौत।

इमरोज़ होना कायरता नहीं है
और न ही साहिर होना कोई वीरता
मैं तो इनके बीच आकर कहीं
जैतून के फूल बन महकना चाहता था !

आयुष झा
भरगामा, अररिया (बिहार)
jhaaayush109@gmail.com

काले तिल वाली लड़की

काले तिल वाली लड़की
कल तुम जिससे मिलीं
फोन आया था वहाँ से
तुम तिल भूल आयी हो

सुनो लड़कियों!
ये तिल बहुत आवारा होते हैं
चन्द्र ग्रहण की तरह
काला तिल अनाज नहीं होता
ये पूरी दुनिया होता है
जिससे मिलो संभलकर मिलो
ये मिलना भी ज्वार-भाटा है
जिसमें तुम डूब जाती हो
और भूल आती हो तिल
ये तिल अभिशाप नहीं!

देखो!
मेरे हाथ में भी एक तिल है
अम्मा ने कहा- खूब पैसा होगा
मुट्ठी तो बांधों जरा
पर मुट्ठी कहाँ बंधी रही है
जो अब रहेगी
खुल ही जाती है
और दिख जाता है तिल
ये छुप नहीं सकता
और दुनिया ढूंढ लेती है
ऐसे ही!
धूप नहीं पड़ती
देखो पर्दा लगा है
पर्दे के भीतर भी
लड़की बदचलन हो जाती हैं,
और तिल आवारा
और तुम हो कि नदी में छलांग लगाती हो!

दीप्ति शर्मा
deepti09sharma@gmail.com

मार्था बताओ, मैं किससे प्रेम करूँ!

मार्था रिवेरा गैरिडो ! क्या मैं ऐसी औरत के प्रेम में पड़ूँ जो अभी खेत से लौटी है मजदूरी करके
सिर पर लकड़ियां उठाए
और पसीने से भीगी हुई है सिर से पैर तक
जिसका मन प्रेम नहीं रोटी मांग रहा है,

गैरीडो ! क्या मैं ऐसी औरत के प्रेम में पड़ूँ
जिसे जुनून के नाम पर लस्सी चाहिए खाने के साथ पड़ोसियों से मांगकर लाई हुई
जो बिलोवने के पास नहीं
बल्कि गेट पर किसी दूसरे बर्तन द्वारा ऊपर से
उड़ेली गयी थी उसके बर्तन में

ऐसी औरत जो कुछ नहीं जानती,
कुछ नहीं लिखती-पढ़ती और न ही पेंटिंग्स बनाती है
टीवी नहीं है जिनके घरों में
क्या ऐसी औरतों से उनके सुकून छीन नहीं लिए हैं
क्रूर व्यवस्थाओं ने
और क्या हंसना भूल नहीं गयी हैं वे !
क्या ऐसी औरतों में जीवंत भावनाएं मिल भी जाती हैं प्रेम के लिए

एक शिद्दत से जीती हुई, मज़ेदार, पारदर्शी, बेजोड़ और कभी-कभी बेतुकी भी हो
इन सबसे इतर कौन-सी औरत है
जिसे प्यार चाहिए !
क्या जीवित रहने के लिए बेघर औरतों को रोटी काफी नहीं है
क्या उन्हें बचाने के लिए उनके लिए घर पैदा करना जरूरी नहीं
कि वे जिंदा रह सकें

मार्था ! बताओ मैं किस औरत से प्यार करूँ ?

(स्पेनिश कवयित्री Martha Rivera Garrido के नाम, जिन्होंने औरत और प्रेम के संबन्ध में पुरुष को एक हिदायतनुमा कविता लिखी।)

एस.एस.पंवार
पीली मंदोरी, फतेहाबाद (हरियाणा)
satpalpanwar90@gmail.com

स्त्री के प्रति

मेरे एक कदम के आगे रखती है वो
दस कदम
मेरे तमाम विश्लेषणों में रहती है शामिल
एक सारवान मत के साथ

एक स्त्री का होना विश्वास देता है
जागृत रखता है अंधेरों में पुरुष को

वह स्त्री तमाम ज़रूरतों की धुरी है
जहाँ पर आकर थम जाते हैं अभाव

उससे बाहर नहीं है कोई भी पीड़ा
वहाँ खुले हुए हैं सारे सोते प्रेम के।

एक स्त्री होना
आश्वस्त होना है भविष्य से
वह धो देती हैं
अतीत लेकर आँसू

वह रहती हैं हर पल हर क्षण
घुली मिली-सी
थोड़ी-थोड़ी सब में!

संजय छीपा
मंगरोप, हमीरगढ़, भीलवाड़ा (राजस्थान)
sanjaychhipa550@gmail.com

बचा हुआ प्रेम

सब जा रहे हो जब
आंख बचा कर
टूटे हुए फूलों से
तब तुम ठहर कर सुनना उनसे
टूटने से पहले की कहानियां

रिक्त होती नदी की आत्मा में
उतरना तुम धीरे से
और आवाज देना
उसके गर्भ में
बचे हुए पानी को

प्रौढ़ होती पत्नियों को
चूमना तुम
एक से अधिक बार
पक्के रंग वाले प्रेमिकाओं से
करना थोड़ा सा और अधिक प्रेम

जाने वालों की जेब में
चुपके से रख देना
लौट कर आने वाली
कुछ कविताएं

बचे हुए दिनों में
बचाए रखना तुम
प्रेम को

बचा हुआ प्रेम ही
प्रेमी होगा
तुम्हारे बचे हुए दिनों।

नरेश गुर्जर 'नील'
सुजानगढ़, चुरू (राजस्थान)
nareshgurjar902@gmail.com

सदी चुप है!

चुप्पियां बहुत संक्रामक होती हैं,
एक मुर्दा शान्ति से लील लेती हैं
शब्दों की बाकी बची हुई उम्र को...।
वो शब्द
जिन्हें अभी खिलखिलाना बाकी था..
जिन्हें बहुत कुछ अभी कहना बाकी था।
हिसाब नहीं देती ये अपने कब्जे में ली गयी चीजों का...
दे देती हैं मौत उम्मीदों की लम्बी फेहरिश्त को
धीरे-धीरे धीमा जहर देकर।

शालिनी सिंह
shaliniftp@gmail.com

भरकर एक लंबी आह
खींच लेती हैं सारी नमी जीवन की,
ये नम होती चुप्पियां ज्यादा खतरनाक होती हैं...
ये ऐसे समझा जा सकता है कि कैसे हरा-भरा जंगल बदल जाता है
शुष्क रेगिस्तान में
नमी के चुप्पी साध लेने भर से...

इतिहास गवाह है
एक सदी की चुप्पी ने
आने वाली कई सदियों को गुलाम किया है!
मार दिया बच्चों का बचपना,
युवाओं के रंगीन सपने
बुजुर्गों की उम्मीदें और समझदारी।
ये मानो संक्रमण का काल है !

जमा है बर्फ चुप्पियों की इस सदी में...
चुप्पियों की शुष्कता
संवादों की उपयोगिता खत्म कर देती है
मार देती है रिश्तों की प्रगाढ़ता
जब एक चुप सी लग जाती है...।

नहीं वश होता अपना,
ये चुप्पियाँ बड़ी मनमानी होती हैं।
जब होती हैं अपने रंग में
जीवन के हर रंग को बेरंग मान लेती हैं,
वैसे ही जैसे जब चुप हो जाती है एक औरत,
वो घर जो उसकी गुनगुनाहट का आदी था
खुद-ब-खुद मर जाता है...।

जाने क्यों इस सदी ने भी चुप-सी लगा रखी है...
आदी होते जा रहे हैं हम चुप्पी के...
कहीं हम बोलना ही न भूल जाएँ
एक रोज पहले अपने लिए
फिर दूसरों के लिए और फिर देश के लिए...।

हम काफी कुछ भेंट चढ़ा चुके हैं अपनी चुप्पी को...
इस चुप्पी ने लील लिया हमें और हम जैसे बहुतों को।
ये बीमारी संक्रामक है...
आपके और देश हित में सूचना जारी की जाती है...
बचकर रहिएगा,
ये अब चुप्पियों का देश है
आवाज़ के नगाड़े पिछली सदी में बजा करते थे
ये गुलामी का दौर है
ये गुमनामी की सदी है!

ISSN : 2319-2178

संभावना

धरती पर उदासी है, बहोत गहरी
लेकिन दरख़्तों ने मजबूत जड़ों से अभी भी पकड़ा हुआ है धरती का कांधा
पहाड़ों ने भी धरती का साथ नहीं छोड़ा
वे अभी भी खड़े हैं सतह से जुड़ कर
पानी अभी भी दे रहा है मिट्टी के कलेजे को ठंडक
दिन-रात अभी भी ठहरते हैं धरती की छत पर

धरती पर गहरी उदासी में
कोई गिलहरी फुदक के जाती है और धनक पैदा कर देती है उदास परतों में

चिड़ियों के समूह गान से
जंगलों में धरती के पुराने गीत लौट आएं
चींटियां अपनी सुरंगों से धरती की धमनियों में उतरती हैं रक्त-प्रवाह सी

दुख और उदासी के इस पृष्ठ पर सब ही तो एक साथ हैं
बस मनुष्यों ने ही भरोसा तोड़ दिया है धरती का

धरती उदास है
फिर भी
पुरुषों के पाषाण हृदयों में
बच्चों की किलकारी से स्पंदन होता है

औरतें, मजबूत हाथों में धरती की मिट्टी थाम लेती हैं
और शुक्र मनाती हैं धरती के साथ
जीवन की बची हुई संभावना
को देखकर
गहरी उदासी में भी।

अनुराधा अनन्या
जींद (हरियाणा)
avani17289@gmail.com

अनचिन्ही भाषा

सुनो कवि,
मैं सीखना चाहती हूँ
तुम्हारे आँखों की वह भाषा
जो नहीं पाई जाती है
किसी शब्दकोश में...

मैं पढ़ना चाहती हूँ
तुम्हारे दुखों को
जो किसी किताबों में नहीं लिखी गई...

मैं महसूसना चाहती हूँ
उस प्रेम को
जो तुम्हारे हृदय में
विदग्ध है अपनी मातृभाषा की तरह...

तुम्हारे सीने में सिर टिकाकर
सुनना चाहती हूँ
तुम्हारे अतीत की
उन सारे उठापटक को
जिसने तुमसे छीन ली थी
तुम्हारी पहचान
तुम्हारा वजूद
हाँ, मैं सीखना चाहती हूँ
स्वयं को परिभाषित करने की लिपि
जो तुम्हारे सीने में आज भी
ठकठकाती है,
अन्तर्बोध की तरह...

मैं लौटना चाहती हूँ
तुम्हारी स्मृतियों में
जो विस्मृत हो चुकी हैं काल में
मैं कालवधु
उन विस्मृतियों की कालवाधा बन कर
खड़ी हो जाना चाहती हूँ
उन अवरोधों पर
उन सीमाओं पर...

मैं तुम्हारी प्राथमिक पाठशालाओं की
वह तुतली जबान हूँ
जिसे याद करते ही
तुम घुल जाते हो मुझमें
वितस्ता नदी में घुले अंतिम अवशेषों की तरह ....

सीमा संगसार
बरौनी, बेगूसराय , बिहार
sandra.seema777@gmail.com

शोध-लेख

विज्ञापन: स्वरूप एवं सीमाएं (प्रिंट मीडिया के संदर्भ में)

प्रो. हितेन्द्र कुमार मिश्र
hiten.hindi@gmail.com

विज्ञापन मीडिया जगत का एक सुप्रसिद्ध शब्द है। पाठकीय दृष्टि से इसका चाहे जो महत्त्व हो अखबार प्रबंधन में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। बिना इसके अखबार का संचालन ही सम्भव नहीं है। यह समाचार पत्र की खुराक है। समाचार पत्रों के प्रकाशन में होने वाले व्यय का लगभग 70-80 प्रतिशत हिस्सा इसी विज्ञापन से प्राप्त होता है। विज्ञापन मूलतः ज्ञापन शब्द से निर्मित है। इसका अर्थ जताना, बताना, प्रकट करना बताया गया है। इस कोश में इसे संज्ञा शब्द बताया गया है। जिसका आशय वह पत्र है जिसमें याद दिलाने के लिए आवश्यक बातें संक्षेप में लिख दी गई हों, घटनाओं का वह संक्षिप्त अभिलेख जो बाद में प्रयोग के लिए हो, स्मारक, संस्मरण पत्र[1] इसके समानार्थक हैं। इसी ज्ञापन में वि उपसर्ग लगाने से विज्ञापन शब्द की निर्मिति होती है। जिसका अर्थ विशेष ज्ञापन, सूचना अथवा प्रचार से लगाया जा सकता है। मीडिया विशेषज्ञ गुलाब कोठारी का मानना है कि विज्ञापन अपने आप में जनसंचार का एक पूर्ण एवं स्वतंत्र माध्यम है जिसका मुख्य आधार पाठक व दर्शक वर्ग तक विभिन्न माध्यमों द्वारा जानकारी पहुँचाना है और यही इसका एकमात्र अर्थ भी माना जाता है, किंतु यह अपने आप में उस वक्त तक परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक कि इसे प्रचार तंत्र के अन्य आयामों के साथ संतुलित एवं योजनाबद्ध तरीके से जोड़ा न जाय। के के सक्सेना के अनुसार 'विज्ञापन का तात्पर्य एक ऐसी पद्धति से है जिसके द्वारा कुछ निश्चित वस्तुओं या सेवाओं के अस्तित्व तथा विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है।' डॉ. अर्जुन तिवारी के अनुसार 'विज्ञापन अर्थ-लाभ का प्रभावकारी माध्यम है तथा सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त उपकरण है।'[2]

पत्रकारिता के क्षेत्र में विज्ञापन का प्रयोग प्रचार के अर्थ लिया जाता है। इसका अंग्रेजी समानार्थक Advertisement है। लैटिन भाषा में इसका विकास Ad verter शब्द से हुआ जिसका अर्थ to turn towards से लिया जाता है। विकिपिडिया के अनुसार- The purpose of Advertising may also be to be reassure employees or shareholders that a company is viable or successful. आक्सफोर्ड डिक्सनरी एंड थेसारस में इसका अर्थ Public Announcement और Marketing[3] दिया हुआ है। जबकि राजपाल हिन्दी-अंग्रेजी थेसारस में इसका अर्थ Notice अथवा Notification के अर्थ में दिया गया है।[4] एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका के अनुसार- किसी वस्तु के विक्रय अथवा किसी सेवा के प्रसार हेतु मूल्य चुकाकर की गई सेवा घोषणा ही विज्ञापन है। वेवस्टर न्यू वर्ड डिक्सनरी के अनुसार-

1. To tell about or praise (to product, act) as through newspaper, radio or like so as promote sales.
2. To make known.
3. To call the public attention to things for sale.

विज्ञापन अपने इन्हीं उद्देश्यों को लेकर ग्राहक और उत्पाद के बीच एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। किन्तु बाजारवादी दृष्टि ने आम आदमी के मन में इसके लिए अच्छी धरणा नहीं विकसित की है। आम तौर पर इसे व्यवसाय का तरफदार माना जाता है उसे ग्राहक का नहीं अपितु व्यावसायिकता का प्रतिनिधि माना जाता है। जबकि देखा जाय तो यह मात्र व्यावसायिकता का प्रतिनिधित्व ही नहीं करता बल्कि उत्पाद के गुण-दोषों की ओर संकेत भी करता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की अपनी जरूरते हैं, अपनी आदतें हैं और व्यक्ति उसी के प्रभाव से उत्पाद की ओर आकर्षित होता है। अब अगर व्यक्ति में कमजोरी है और वह अगर इस उत्पाद की असंगति की ओर आकर्षित हो जाता है तो इसमें विज्ञापन का कोई दोष नहीं है। विज्ञापन तो जन कल्याण और जन सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए उत्पाद के वैशिष्ट्य का बखान करता है और ग्राहक को आकृष्ट करते हुए उत्पाद की विक्री बढ़ाने में सहायता करता है।

विज्ञापन मनुष्य जीवन से जुड़ी हुई एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण क्रिया के रूप में अपना स्थान निर्मित किया है। जो अनुमानतः मनुष्य जीवन में मौखिक रूप से जीवन के प्रारम्भ से ही उपस्थित रही होगी। किन्तु, सभ्यता के विकास एवं मनुष्य जीवन की जटिलताओं ने इसे नित्य-प्रतिदिन एक नया आयाम दिया। विकिपिडिया के अनुसार चीन, अमेरिका सहित अनेक देशों में लोकप्रियता प्राप्त करने का यह प्रमुख माध्यम था। यह ईसा पूर्व शताब्दियों पहले से विद्यमान था। आधुनिक छापाखना जर्मनी में गुटेनबर्ग ने 1426 में स्थापित किया था किन्तु, मुद्रित विज्ञापन का प्रथम प्रयोग उन्होंने एक हैण्डबिल छापकर 1473 में किया था। किन्तु, इसका आधुनिक स्वरूप लगभग अठारहवीं शताब्दी में मुद्रण पत्रकारिता के विकास के साथ प्रारंभ हुआ। इंग्लैण्ड के थामस जेबराट को आधुनिक विज्ञापन का जनक कहा जाता है। ये पियर्स साबुन कम्पनी के लिए काम करते थे। इस विज्ञापन और साबुन की गुणवत्ता ने इसे शीघ्र ही दुनिया का पहला रजिस्टर्ड ब्राण्ड बना दिया। 'गुड मार्निंग, हैव यू युज्ड पियर्स सोप' अपने समय का प्रसिद्ध श्लोगन था। किन्तु, ऐसा नही है कि पियर्स ही पहला विज्ञापित उत्पाद है। इसके पहले कोका-कोला ने विज्ञापन के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कर दी थी और भी अनेक उत्पादों नें अपने विज्ञापन 19वीं 20वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति और उसकी सफलता के पीछे विज्ञापन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज के समय में विज्ञापन ने भी अपना बहुआयामी विस्तार किया है। मुद्रण पत्रकारिता के अलावा पट्ट लेखन (Wall Writing), पर्ची वितरण (Pumplet Disrribution), होर्डिंग, ग्लोसाईन, इलेक्ट्रानिक मीडिया, सोसल मीडिया, ट्वीटर, ब्लाग लेखन जैसे सैकड़ों माध्यम विज्ञापन के विकसित हो चुके हैं। विज्ञापन के इन नव विकसित माध्यमों ने बाजार और रोजगार को बहुत प्रभावित किया है।

विज्ञापन युग की सबसे चमत्कारी विधा है। दुनिया का व्यापार-वाणिज्य, लेन-देन, समूचा कार्पोरेट परिदृश्य विज्ञापन से प्रभावित है। अपने आरम्भ काल से ही विज्ञापन वस्तु, सेवा या विचार को बेचने के लिए व्यवहार में लाया जा रहा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के वर्चस्व वाले समय में विज्ञापन के माध्यम से ही उत्पादक उपभोक्ता तक पहुँच रहे हैं, उन्हें अपने पास बुला रहे हैं, उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं। विज्ञापन आज एक आकर्षक व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। विज्ञापन व्यवसाय कलात्मकता और सृजन-कौशल के साथ-साथ प्रबंधन, मार्केटिंग का मिला-जुला एक समग्र व्यवसाय है।[6]

वस्तुतः आज का समय बाजार से प्रभावित है। बाजार से जीवन और समाज सबका संचालन हो रहा है इसलिए इससे कहीं से भी संभव दिखाई नहीं देता। जनता की इसी कमजोरी का फायदा विज्ञापन को मिल रहा है। जनता के विश्वास के साथ कभी-कभी ये विज्ञापन नाजायज फायदा भी उठाते है। जनता में भ्रामक प्रचार के माध्यम से उत्पादक कंपनियों को फायदा पहुँचाकर अपनी स्थितियों को मजबूत करते हैं। विज्ञापन के आकर्षक स्वरूप के मोंहपास में फॅसा उपभोक्ता प्रायः ठगा जाता है। सूचना एवं तकनीकि के इस भागमभाग में लोगों में सच से अधिक झूठ बिकने लगा है। इस सम्बन्ध में एक रोचक चुटकुला कहा जाता है कि किसी समय एक नेक इंसान की मृत्यु हुई। यमराज के बही-खातों का हिसाब-किताब पूरा होने के बाद मृतात्मा की नेकी शत-प्रतिशत खरी उतरी। इसलिए यमराज ने मृतात्मा को उसे मनचाहा लोक (स्वर्ग एवं नरक) में से चुनने को कहा और कहा कि चाहो तो दोनों विभागों का निरीक्षण करने के बाद अपना निर्णय कर सकते हो। मृतात्मा स्वर्ग के आकर्षण से ग्रसित था इसलिए पहले स्वर्ग विभाग को देखना चाहा। कारिन्दा उसे स्वर्ग विभाग में ले गया। मृतात्मा ने देखा कि इस विभाग में बड़ी शांति है। कोई किसी से बात भी नही कर

रहा है और सभी अच्छे-अच्छे ग्रंथ पढ़ रहे हैं। रसोई में खाने में भी कोई आकर्षण नही है। इसके पश्चात वह नरक विभाग में गया। वहॉ की सूरत बिलकुल उल्टी थी। सब लोग नाच गा रहे थे और मस्ती में डूबे हुए थे। रसोई में भी खूशबूदार खाना पक रहा था। मृतातमा ने झट से निर्णय लिया और यमराज के पास जाकर बोला कि महराज मुझे नरक दे दीजिए। यमराज ने चकित होकर मृतात्मा को पलभर देखा और उसे नरक विभाग में भेज दिया। किन्तु, विभाग स्वीकृति के बाद जब वह अन्दर गया तो वहॉ की स्थिति उल्टी पाई। नाच-गाने के साथ-साथ धक्का-मुक्की एवं मारपीट से जान बचा कर भाग खड़ा हुआ। वह भागकर यमराज के पास पहुँचा और वहाँ का हाल यमराज को बताते हुए अपना विभाग परिवर्तित करने का निवेदन किया। यमराज ने मृतातमा से कहा कि दरअसल जो तुमने देखा था वह नरक का विज्ञापन विभाग था। झूठ को सच बनाने का विभाग। एक खरीदो और तीन फ्री पाओ। दरअसल समय इसी झूठ को बेचने का है। कल तक जो कहते थे 'यूपी में दम है क्योंकि जुर्म यहॉ कम है' आज कहते हैं कि 'कुछ दिन तो गुजारिए गुजरात में'। एक सप्ताह में गोरा बनाने का वादा। मेमोरी रिचार्ज। यहॉ सब कुछ बिकता है। रास्ता क्लियर है। यहॉ भी मीडिया के रंगीन पर्दे अधिक प्रभावशाली है किंतु, जहॉ तक विश्वास का प्रश्न है इसमें प्रिंट मीडिया के क्षेत्र में जनविश्वास को अधिक मत प्राप्त है। एक आंकड़े के मुताबिक विज्ञापन के क्षेत्र में बढ़ते रूझान सर्वेक्षण में लोगों ने प्रिंट मीडिया को 63 प्रतिशत पसंद किया है जबकि टेलीविजन को 41 प्रतिशत एवं इण्टरनेट को 25 प्रतिशत लोगों ने पसंद किया है।

विज्ञापनों के संदर्भ में ये आंकड़े प्रिंट मीडिया के प्रति पाठकों की रूझान को दर्शाते हैं। इस मीडिया के दोनों विज्ञापन प्रारूपों जैसे- डिस्प्ले और क्लासीफाइड, में यह समान रूप से देखा जा सकता है। इन विज्ञापनों का एक लक्षित पाठक समूह होता है। लक्षित पाठक समूह से आशय बहुतांश में पढ़ने वाले समूह या सम्बन्धित अखबार के उपभोक्ता समूह से है। वह सम्बन्धित अखबार अपने प्रत्येक प्रकाशन में इस बात का ख्याल रखता है कि उसके द्वारा प्रस्तुत सामग्री उसके पाठक के लिए कितना उपयोगी है। बात विज्ञापन के सम्बन्ध में किया जाय तो विज्ञापन अपने इसी लक्षित समूह पर अपना ध्यान ज्यादा केंद्रित करता है। यह लक्षित पाठक समूह दो आधारों पर निर्धारित होता है- प्रथम तो अखबार का लक्षित समूह और दूसरा विज्ञापन का लक्षित समूह। पहले अखबारों के लक्षित समूह को लेते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है कि पाठकों का अलग-अलग समूह होता है।

समाज में समूहों के विभाजन का एक प्रमुख आधार आर्थिक है। इस आधार पर समाज निम्न, मध्य एवं उच्च वर्ग में विभाजित है। प्रत्येक वर्ग का अपना खास रहन-सहन एवं रूचियॉ हैं। बाजार की दृष्टि से सबसे बड़ा समूह मध्य वर्ग का है। इसलिए अखबार का विज्ञापन भी उसकी रूचि का होगा। मध्य वर्ग के रहन-सहन एवं उसके सपनों के हिसाब से होगा। उदाहरण के तौर पर देखें तो मध्य वर्ग द्वारा सर्वाधिक आदर प्राप्त हिंदी और स्थानीय भाषाओं के अखबार हैं। इन अखबारों में विज्ञापन उच्च वर्ग के नही होंगे। मर्सीडीज, बीएमडब्लू, बुगाती और लखटकिया बाइकों के साथ महंगे एलसीडी एवं फाइव स्टार होटलों, बारों के विज्ञापन इन अखबारों में नहीं होगा, यहॉ तो खैनी, बीड़ी, सिगरेट, सस्ती बाइक, सस्ती कारों, सस्ते होटलों का विज्ञापन ही इन मध्य वर्गीय पाठक समूह वाले अखबारों का मुख्य विज्ञापन होगा। मर्सीडीज, बीएमडब्लू, बुगाती और लखटकिया बाइकों के साथ महंगे एलसीडी एवं फाइव स्टार होटलों, बारों के विज्ञापन टाइम्स आफ इण्डिया, द टेलिग्राफ, द हिंदू, इण्डियन एक्सप्रेस इत्यादि अखबारों की शोभा हैं।

विज्ञापनों के भी अपने लक्षित समूह हैं। कौन सा उत्पाद किस उपभोक्ता के लिए आवश्यक है, वहॉ इसका ध्यान रखा जाता है। ध्यान से देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि साबुन के विज्ञापन स्त्री, फेस क्रीम के विज्ञापन में स्त्री, सेविंग क्रीम एवं ब्लेड के विज्ञापन में किशोर, बाइक के विज्ञापन में युवा और ग्राइपवाटर का गुण तो दादी मॉ ही जापती हैं और बहु से मुन्ने के रोने पर ग्राइपवाटर देने को कहती हैं। भाई तजुर्बे की बात है। परफ्यूम लगाकर चलते नौजवान पर युवतियॉ मेहरबान दिखाई जाती हैं। कभी-कभी इन विज्ञापनों में अश्लीलता भी बाजार की होड़ में परोस दी जाती हैं। ऐसे विज्ञापनों को देखकर सुचितावादी राम-राम कहकर जमाने को कोसने से बाज नहीं आते, लेकिन विज्ञापन की अर्थगणित पर ध्यान दें रास्ता क्लियर है। उत्पादक कम्पनियों के लिए उपभोक्ता तो हिंदी कवि धूमिल के शब्दों में हर आदमी एक जोड़ी जूता है अर्थात हर आदमी उपभोक्ता है। आदमी को ग्राहक में बदलने, उत्पादक को विक्रेता में बदलने का अगर माद्दा नही तो बहुत हद तक दोष विज्ञापनों को ही जाता है। इसमें जैसे ही मुनाफे की

गुंजाईस गई, सारी आदमीयत खत्म हो जाती है- ग्राहक आदमी नहीं रहता, विक्रेता भी कुछ और नहीं देखता।[7] सारांशतः लक्षित समूह ही विज्ञापनों का प्रमुख आधार है।

वस्तुतः विज्ञापन का प्रमुख आधार उसका लक्षित पाठक समूह ही है किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे दायित्वों का समाज के सापेक्ष जबाबदेही भी बनती है। इसलिए उसे भी अपनी सीमाएं तय करनी चाहिए। उसपर भी सेंसर की सख्ती होनी चाहिए। आजादी वहीं तक वाजिब होती है जहॉ तक वह दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करती। विज्ञापनों का एकांगी स्वरूप या सच-झूठ के अनुपात को बदलने के गुण को देखते हुए यह बदलाव और हमारे समय का यह नामकरण सच में एक आतंक पैदा करता है। यह हिसाब बहुत आसानी से लगाया जा सकता है अंकल चिप्स या मैगी के प्रति पैकेट या फिर एक टायर या फ्रिज या टीवी पर उसके विज्ञापन से कितना बोझ बढ़ जाता है। औसतन विज्ञापन का खर्च वस्तु के निर्माण लागत का आधा से भी कम होता है। विक्रेता के कमीशन एवं विज्ञापन के खर्च का सारा ताम-झाम उतपाद के विक्रय से मिलने वाले विक्रय मूल्य पर ही निर्भर रहता है। इसलिए किसी कुशल भड़भूजे के पापकार्न को या किसी हलवाई के अच्छे चाकलेट-मिठाई को या फिर किसी कारीगर या वैज्ञानिक के आविष्कार को हम कितना भी अद्भुत क्यों न मानें, उसके व्यावसायिक दोहन की भी एक सीमा होती है और यह पैसा ग्राहक कहीं पेंड़ या आसमान से तोड़कर नही लाता। चार आने से भी कम के आलू से बना चिप्स दस-पंद्रह रूपये में विज्ञापन के सहारे ही बेचा जाता है। इसप्रकार के विज्ञापनी लूट-पाट से समाज का अहित ही होता है।

इस प्रकार देखा जाय तो मीडिया ने जनता से लेकर कार्पोरेट जगत तक सबको प्रभावित किया है। अब अगर इसी परिप्रक्ष्य में खबरों पर भी विचार किया जाय तो वहॉ भी चौकाने वाले तथ्य दिखाई देते हैं। खबर ही वह जरिया है जिसने अखबार को उसकी वास्तविक जगह दी है। इसलिए खबर अखबार का प्राण तत्व है। इसकी उपयोगिता को ध्यान में रक्षते हुए ही कहा गया कि 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।' प्रत्येक अखबार का एक सामाजिक उत्तरदायित्व बनता है। अखबारों ने समाज के लिए बड़े-बड़े कार्य किए हैं। आजादी की लड़ाई हो या आजादी की रक्षा, प्रत्येक अवसर पर मीडिया समाज के साथ और उसकी पक्षधरता को थामें दिखाई दी है।

संदर्भः

1- वृहत हिन्दी कोश, पृ. 432
2- आधुनिक विज्ञापन: कला एवं व्यवहार - डॉ. अर्जुन तिवारी पृ. 10
3- Oxford Dictionary & Thesaurus, Page- 13
4- राजपाल हिन्दी-अंग्रेजी थेसारस, पृ. 236
5- आधुनिक विज्ञापन: कला एवं व्यवहार- डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ. 17
6- आधुनिक विज्ञापन: कला एवं व्यवहार- डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ. 39
7- मीडिया, शासन और समाज - डॉ. अरविन्द मोहन, पृ. 41

महात्मा गाँधी के लिए खास मंडप

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी सिर्फ स्वतंत्रता सेनानी या राजनीतिक ऑब्जर्वर ही नहीं थे, वे एक सफल लेखक, संपादक और प्रकाशक भी थे। उनके लेखन और संपादन की प्रतिभा ने विदेशी लेखकों को भी प्रभावित किया है। इस साल लगने वाला विश्व पुस्तक मेला महात्मा गांधी और उनका साहित्यिक योगदान पर केंद्रित रहा। मेले में साबरमती आश्रम के सहयोग से अलग महात्मा गांधी के लेखन को दिखाने के लिए अलग से मंडप दिखाई दिया। 4 से 12 जनवरी तक आयोजित होने वाले इस मेले की थीम 'महात्मा गांधी : लेखकों के लेखक' रही। महात्मा गांधी के लिए ख़ास मंडप इस वर्ष भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के व्यक्तिगत और उनसे सम्बंधित किताबों के लिए विश्व पुस्तक मेले में ख़ास तरह का मंडप सजाया गया था। इस मंडप में अलग- अलग भाषाओँ में लिखी हुई महात्मा गांधी पर आधारित किताबें थीं।

प्रस्तुति : **राम सुभाष**
shubhmaurya0@gmail.com

भूमण्डलीकरण के दौर में भाषाओं पर बढ़ता खतरा

आकांक्षा यादव
kk_akanksha@yahoo.com

भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, उन्नत प्रौद्योगिकी एवं सूचना-तकनीक के बढ़ते इस युग में सबसे बड़ा खतरा भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए पैदा हुआ है। भारत सदैव से विभिन्नताओं का देश रहा है। यहाँ के बारे में कहा जाता है कि यहाँ हर कोस पर पानी और हर चार कोस पर वाणी यानी भाषा बदल जाती है। पर लगता है यह मुहावरा कुछ दिनों में पुराना पड़ जायेगा। वस्तुतः भारत में बोली जाने वाली सैकड़ों भाषाओं में से **196** भाषा खत्म होने के कगार पर हैं। लेकिन इससे भी ज्यादा चिंताजनक पहलू यह है कि बोलियों का पूरा संसार ही सिमटता जा रहा है। दुनिया में बोली जाने वाली 6900 भाषाओं में से 2500 का अस्तित्व खतरे में है। भाषाएं आधुनिकीकरण के दौर में प्रजातियों की तरह विलुप्त होती जा रही हैं। अगर संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2001 में किए गए अध्ययन से इसकी तुलना की जाए तो पिछले एक दशक में बदलाव काफी तेजी से हुआ है। उस समय विलुप्तप्राय भाषाओं की संख्या मात्र 900 थी, लेकिन यह गंभीर चिंता का विषय है कि तमाम देशों में इस ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि 1961 की जनगणना में भारत में जहाँ 1,652 भाषाओं का जिक्र है, वहीं 1971 में यह घटकर 182 हो गई और 2001 में मात्र 122। स्पष्ट है कि इन पाँच दशकों में भारत की 1530 भाषाएं विलुप्त हो चुकी है। इंटरनेट पर हर कुछ खंगालने वाली युवा पीढ़ी भी उन्हीं भाषाओं को तरजीह देती है जिनका उनके कैरियर से कोई वास्ता होता है। नतीजन प्रगति और विकास के तमाम दावों के बीच कई भाषाएं व बोलियाँ अपनी उपेक्षा के चलते दम तोड़ती नजर आ रही हैं। अंग्रेजी के वर्चस्व और संरक्षण के अभाव में सैकड़ों भाषाएं समाप्ति के कगार पर हैं।

दुनियाभर में भाषाओं की इसी स्थिति के कारण संयुक्त राष्ट्र ने 1990 के दशक में 21 फरवरी को अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाए जाने की घोषणा की थी। बांग्लादेश में 1952 में भाषा को लेकर एक आंदोलन के बारे में कहा जाता है कि इसी से बांग्लादेश की आजादी के आंदोलन की नींव पड़ी थी और भारत के सहयोग से नौ महीने तक चले मुक्ति संग्राम की परिणति पाकिस्तान से अलग होकर बांग्लादेश बनने के रूप में हुई थी। इस आंदोलन की शुरुआत तत्कालीन पाकिस्तान सरकार द्वारा देश के पूर्वी हिस्से पर भी राष्ट्र भाषा के रूप में उर्दू को थोपे जाने के विरोध से हुई थी। संयुक्त राष्ट्र की पहली 'स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स इंडीजीनस पीपुल्स' रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया गया है कि दुनिया भर में छह से सात हजार तक भाषाएँ बोली जाती हैं, इनमें से बहुत सी भाषाओं पर लुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि इनमें से अधिकतर भाषाएँ बहुत कम लोग बोलते हैं, जबकि बहुत थोड़ी सी भाषाएँ बहुत सारे

लोगों द्वारा बोली जाती हैं। सभी मौजूदा भाषाओं में से लगभग 90 फीसदी अगले 100 सालों में लुप्त हो सकती हैं, क्योंकि दुनिया की लगभग 97 फीसदी आबादी इनमें से सिर्फ चार फीसदी भाषाएँ बोलती हैं। यूनेस्को द्वारा किए गए अध्ययन के मुताबिक ठेठ आदिवासी भाषाओं पर विलुप्ति का खतरा बढ़ता ही जा रहा है और इन्हें बचाने की आपात स्तर पर कोशिशें करनी होंगी।

यूनेस्को द्वारा कराये गये इस अध्ययन पर गौर करें तो इस रिपोर्ट में सबसे ज्यादा खतरा भारत की भाषाओं पर बताया गया है। जहाँ भारत में यह 196 भाषाओं पर है, वहीं अमेरिका व इण्डोनेशिया क्रमशः 192 व 147 भाषाओं पर खतरे के साथ दूसरे व तीसरे नंबर पर हैं। भाषाओं के मामले में सर्वाधिक समृद्ध पापुआ न्यू गिनी में 800 से ज्यादा भाषाएँ बोली जाती हैं, जबकि वहाँ केवल 88 भाषाओं पर ही खतरा है। पीपुल्स लिंग्युस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया (पीएलएसआई) के अध्ययन के अनुसार पिछले 50 वर्षों के दौरान 780 विभिन्न बोलियों वाले देश की 250 भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं। इनमें से 22 अधिसूचित भाषाएं हैं। जनसंख्या के आंकड़ों के अनुसार 10 हजार से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली 122 भाषाएं हैं। बाकी 10 हजार से कम लोगों द्वारा बोली जाती है। आयरिश भाषाई विद्वान जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के बाद पहली बार यह भाषाई सर्वे किया गया है। ग्रियर्सन ने 1898-1928 के बीच भाषाई सर्वे किया था। पीएलएसआई सार्वजनिक विमर्श और अप्रेजल फोरम वाला एक गैर सरकारी संगठन है, जिसमें 85 संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के तीन हजार विशेषज्ञ शामिल हैं। आजाद भारत में पहली बार किए गए इस पहले सर्वे में चार वर्ष लगे। सितंबर 2013 में इसकी 72 पुस्तकों में 50 खंड की रिपोर्ट प्रकाशित हुयी।इस रिपोर्ट के अनुसार भाषाई विविधता की दृष्टि से भारत में अरुणाचल प्रदेश सबसे समृद्ध राज्य है, वहाँ 90 से अधिक भाषाएँ बोली जाती है। इसके बाद महाराष्ट्र और गुजरात का स्थान है, जहाँ 50 से अधिक भाषाएँ बोली जाती है। 47 भाषाओं के साथ ओडिशा चौथे स्थान पर है। इसके विपरीत गोवा में सिर्फ तीन भाषाएं बोली जाती हैं तो दादर और नगर हवेली में एक भाषा 'गोरपा' है, जिसका अब तक कोई रिकार्ड नहीं है। करीब 400 से अधिक भाषाएं आदिवासी और घुमंतू व गैर-अधिसूचित जनजातियाँ बोली जाती हैं। यदि भारत में हिंदी बोलने वालों की तादाद लगभग 40 करोड़ है तो सिक्किम में माझी बोलने वालों की तादाद सिर्फ 4 है। लिपियों के आधार पर देखें तो देश में 86 विभिन्न लिपियाँ चलन में हैं। सबसे ज्यादा नौ लिपियों के साथ पश्चिम बंगाल पहले स्थान पर है और कई अन्य लिपियों को भी विकसित करने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है। इस राज्य में 38 विभिन्न भाषाएं बोली जाती हैं। देश की पाँच प्रतिशत भाषाएं और 10 प्रतिशत लिपियां बंगाल में पाई जाती हैं। इस सर्वे के अनुसार उत्तर-पूर्व में किसी एक व्यक्ति द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या दुनिया में सर्वाधिक है। इसके बावजूद पूर्वोत्तर के पाँच राज्यों में बोली जाने वाली करीब 130 भाषाओं का अस्तित्व खतरे में हैं। असम की 55, मेघालय की 31, मणिपुर की 28, नागालैंड की 17 और त्रिपुरा की 10 भाषाएं खतरे में हैं। हाल ही में भारत के अंडमान निकोबार द्वीप समूह की तकरीबन 65000 साल से बोली जाने वाली एक आदिवासी भाषा 'बो' हमेशा के लिए विलुप्त हो गई। वस्तुतः कुछ समय पहले अंडमान में रहने वाले बो कबीले की आखिरी सदस्य 85 वर्षीय बोआ सीनियर के निधन के साथ ही इस आदिवासी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली 'बो' भाषा भी लुप्त हो गई। अंडमान-निकोबार में चिड़ियों पर शोध कर रही जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की प्रोफेसर डॉ० अनविता अब्बी को तो यह देखकर हैरत हुई की बोआ सीनियर चिड़िया से बात कर रही थीं और वे दोनों एक-दूसरे की भाषा समझ रहे थे। गौरतलब है कि ग्रेट अंडमानीज में कुल 10 मूल आदिवासी समुदायों में से एक बो समुदाय की इस अंतिम सदस्य ने 2004 की विनाशकारी सुनामी में अपने घर-बार को खो दिया था और सरकार द्वारा बनाए गए कांक्रीट के शेल्टर में स्ट्रैट द्वीप पर गुजर-बसर कर रही थी। 'बो' भाषा के बारे में भाषाई विशेषज्ञों का मानना है कि यह भाषा अंडमान में प्री-नियोलोथिक समय से इस समुदाय द्वारा उपयोग में लाई जा रही थी। दरअसल, ये भाषाएँ शहरीकरण के चलते दूर-दराज के इलाकों में अंग्रेजी और हिंदी के बढ़ते प्रभाव के कारण हाशिए पर जा रही हैं।

भाषाओं के कमजोर पड़कर दम तोड़ने की स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि दुनिया भर में 199 भाषाएँ ऐसी हैं जिन्हें बोलने वालों की संख्या एक दर्जन लोगों से भी कम है। गौरतलब है कि 1974 में आइसले ऑफ मैन में नेड मैडरेल की मौत के साथ ही 'मैक्स' भाषा खत्म हो गई, जबकि वर्ष 2008 में अलास्का में मैरी स्मिथ जीन्स के निधन से 'इयाक' भाषा का अस्तित्व समाप्त हो गया। दुनिया की एक तिहाई

भाषाएं अफ्रीकी देशों में बोली जाती हैं, आकलन है कि अगली सदी के दौरान इनमें से दस फीसदी खत्म हो जाएंगी। यूक्रेन में कराइम भाषा बोलने वाले केवल छह लोग हैं, जबकि अमेरिका के ओकलाहामा में विशिता भाषा केवल दस लोगों द्वारा बोली जाती है। इसी तरह इंडोनेशिया में लेंगिलू बोलने वाले केवल चार लोग बचे हैं। 178 भाषाएं ऐसी हैं जिन्हें बोलने वाले लोगों की संख्या 150 से कम हैं। ꠸वाकई बोलियाँ-भाषा क्यों विलुप्त हो रही हैं। यह आपने आप में एक जटिल सवाल है। बकौल हिंदी कवयित्री और लेखिका अनामिका, हम इस बात की अवलेहना नहीं कर सकते कि भाषा और बोलियों को बचाने की शुरुआत घर से ही की जा सकती है। हर परिवार में अलग-अलग पीढ़ियाँ होती है। यह जरुरी है कि अलग-अलग घरेलू बोलियों में घर के अंदर संवाद हो। बच्चों में लोक कथाओं के मिथक, लोकोक्तियाँ, माँ-दादी व नानी की कहानियों के जरिए रुप लेती हैं। भाषाई संस्कृति का यह पूर्वराग ही अच्छी भाषा के विकास का आधार है। इस पच्चीकारी से भाषा सहज, पैनी और संवादगम्य होती है। भाषा-बोलियों को बचाने के लिए यह भी जरुरी है कि अनुवाद के जरिए दो भाषिक संस्कृतियों के बीच पुल बनाया जाय। यदि हम आज की स्थितियों में भारतीय परिप्रेक्ष्य को ही लें तो एक ओर अंग्रेजी का हौव्वा है तो दूसरी ओर हिंदी आम आदमी से कट रही है, वहीं उर्दू को मजहब से जोड़ दिया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो उपमहाद्वीप के राजनीतिक परिदृश्य ने दो भाषाई परंपराओं को विकलांग बना दिया। यही नहीं आज की जबान में बोलियों के लफ्जों और कहावतों के समंदर का उपयोग भी नहीं है, इससे भी भाषा कमजोर हुई है।

भारत में भी तेजी से खत्म हो रही भाषाओं और बोलियों को बचाने व संरक्षित करने के प्रयास तेज हो गये हैं। सरकार लुप्तप्राय भाषाओं के संरक्षण और विकास योजना के तहत 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 520 अति लुप्तप्राय भाषाओं के सरंक्षण और विकास पर विचार कर रही है। इस योजना के तहत भाषाओं का चयन बोलने वालों की सबसे कम संख्या से शुरू कर वक्ताओं की बढ़ती हुई संख्या के क्रम में किया जाएगा। योजना के तहत भाषाओं और साहित्य की लिपियाँ और टाइपोग्राफी कोड बनाना, शब्दकोश तैयार करना, शब्दावलियाँ तैयार करना, लुप्तप्राय भाषाओं का विश्वकोश बनाना जैसे कार्य किये जाएंगे। केन्द्र सरकार के अंतर्गत आने वाले केंन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान ने अपनी 'परियोजनाओं डायमेन्शन ऑफ लैंग्वेज इन्डैन्जरमेंट' और 'अंडमान निकोबार भाषा परियोजना' के तहत पहले भी कई लुप्तप्राय भाषाओं पर काम किया है। केंद्र सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से हाल में बोलियों को लेकर एक अध्ययन कराया गया, जिसमें पाया गया कि उत्तर भारत की नौ बोलियां लगभग खत्म होने के कगार पर हैं। इनमें दर्मिया, जाद, राजी, चिनाली, गहरी, जंघूघ, स्पीति, कांशी या मलानी और रोंगपो शामिल हैं। इन बोलियों को पाँच हजार से कम लोग ही बोलते हैं। इनमें दर्मिया, जाद और राजी बोलियाँ तिब्बती-बर्मी परिवार की हैं, जो उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में बोली जाती हैं। राजी को 668, दर्मिया को लगभग ढाई हजार और जद को इससे कुछ अधिक ही लोग बोलते हैं। ये बोलियाँ उत्तरांखड में पिथौरागढ़, धारचूला, जौलजीवी और अस्कोट में बोली जाती हैं। इसी प्रकार उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में ही बोली जाने वाली चिनाली और गहरी बोलियों को बोलने वालों की संख्या भी मात्र दो-तीन हजार ही है। वाकई समय रहते यदि इनको संरक्षित नहीं किया गया तो इन्हें खत्म होने में देरी नहीं लगेगी। इन बोलियों के खत्म होने से वहाँ की संस्कृति भी खत्म हो रही है, इसलिए इनका संरक्षण बेहद जरूरी है।

ऐसे में इन बोलियों को बचाने के लिए केंद्र सरकार ने स्कीम फॉर प्रोटेक्शन एंड प्रिजर्वेशन ऑफ इनडैंजर्ड लैंग्वेज योजना शुरू की है। इसके तहत तेजी से लुप्त हो रही भाषाओं और बोलियों से जुड़े दस्तावेजों को डिजिटल स्वरूप में संरक्षित किया जायेगा। इसके तहत तमाम प्रतिष्ठित शैक्षणिक व शोध संस्थानों को इन बोलियों के संरक्षण की जिम्मेदारी दी गयी हैं। इन नौ विलुप्त प्रायः बोलियों में से तीन बोलियांे दर्मिया, जाद और राजी (जंगली) के संरक्षण का दायित्व लखनऊ विश्वविद्यालय और दो बोलियों चिनाली व गहरी के संरक्षण का काम अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को सौंपा गया है। इसके अलावा दो बोलियों को बचाने का जिम्मा सीआईआईएल मैसूर और एक-एक का कोलकाता और जेएनयू, नई दिल्ली को दिया गया है। इनमें लखनऊ विश्वविद्यालय में भाषा विभाग की विभागाध्यक्ष प्रो. कविता रस्तोगी और अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रो. इम्तियाज हसनैन के नेतृत्व में काम होगा। डिजिटल स्वरूप में संरक्षित करने हेतु सर्वप्रथम लुप्त होती भाषाओं व बोलियों की टेक्स्ट, ऑडियो और वीडियो रिकार्डिंग की जाएगी। टेक्स्ट रिकार्डिंग के बाद बोलियों को इंटरनेशनल फोनेटिक्स

अल्फाबेट्स (आईएफए) में लिखा जाएगा ताकि विश्व के भाषा वैज्ञानिक इन्हें पढ़ सकें और बोली को समझ सकें। आडियो रिकार्डिंग लाइब्रेरी में रखी जाएगी ताकि कोई भी इसको सुनकर समझ सके। वीडियो रिकार्डिंग में इन लोगों की दिनचर्या, बोलियों की संस्कृति और विशेष कार्यक्रमों को भी रिकार्ड किया जाएगा, ताकि बोलियों के साथ-साथ उनकी संस्कृति को भी संरक्षित किया जा सके। यूजीसी ने भी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में लुप्तप्राय भाषाओं के लिए केंद्रों की स्थापना करने हेतु दिशानिर्देश तैयार किए हैं ओर उनसे प्रस्ताव भी मांगे गये थे। इसके जवाब में 13 केंद्रीय विश्वविद्यालयों ने अपने प्रस्ताव भेजे हैं। इसी क्रम में केरल विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं के एक समूह ने भी तेजी से लुप्त हो रही भाषाओं से जुड़े दस्तावेजों को डिजिटल स्वरूप में संरक्षित करने के लिए परियोजना शुरू की है। वहाँ के भाषा विज्ञान विभाग का भाषा विज्ञान अनुसंधान मंच बयारी, मलिजलाशांबा और मइगुरदुने सहित 25 भाषाओं एवं बोलियों को संग्रहित कर चुका है। इन भाषाओं को बोलने वाले अब केवल कुछ ही लोग बचे हैं। केरल की लुप्त होती बोलियों के अलावा इस समूह ने हिमाचल प्रदेश की मंतलिया और पहाड़ी भाषाओं, झारखंड की कुरमली और लद्दाख की पाली भाषा को भी रिकार्ड किया है। यहाँ के भाषा विज्ञान विभाग के तकनीकी अधिकारी एवं परियोजना प्रमुख शिजित एस के निर्देशन में शिक्षकों के दल ने लुप्तप्राय भाषाओं के बचे हुए वक्ताओं की तलाश में देश भर की यात्रा की और उसे रिकार्ड किया। इसके लिए उन्होंने अंग्रेजी में एक प्रश्नमाला तैयार किया और उन लोगों से अपनी मूल भाषा में इसका जवाब देने को कहा। इन 25 में से 15 भाषाओं के वक्ताओं को स्टूडियो में लाकर भी उनकी बातें रिकार्ड की गईं, ताकि इनका डिजिटलीकरण आसानी से हो सके। यह भी एक रोचक तथ्य है कि विश्व में 6,000 से अधिक भाषाएं हैं जिनमें से 300 से ज्यादा भाषाओं के पास अपनी लिपि नहीं है। लेकिन यह धारणा गलत है कि जिस भाषा की लिपि नहीं है वह 'बोली' है। विश्व की ज्यादातर भाषाओं के पास लिपि नहीं है। मौजूदा समय में दुनिया की सबसे प्रभावशाली भाषा, अंगेजी के पास भी अपनी लिपि नहीं है। अंग्रेजी का काम 'रोमन' लिपि से चल रहा है।

वस्तुतः आज सवाल सिर्फ किसी भाषा के खत्म होने का ही नहीं है, बल्कि इसी के साथ उस समुदाय और उससे जुड़ी कई तरह की सांस्कृतिक विरासत के नष्ट होने का अहसास भी होता है। इन भाषाओं का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। इनमें से कुछेक तो कभी समृद्ध और शिष्ट साहित्य का विपुल भण्डार मानी जाती थीं। कुछेक देशों ने इस खतरे को भांपते हुए कदम भी उठाये हैं, नतीजन- ब्रिटेन की भाषा 'कॉर्निश' और न्यू कैलेडोनिया की भाषा 'श्श' को पहले खत्म हुआ मान लिया गया था लेकिन अब इन्हें फिर से बोला जाने लगा है। भाषाएं किसी भी संस्कृति का आईना होती हैं और एक भाषा की समाप्ति का अर्थ है कि एक पूरी सभ्यता भाषा विशेषज्ञों का कहना है कि और संस्कृति का नष्ट होना। इस तरफ सभी देशों को ध्यान देने की जरूरत है, अन्यथा दुनिया अपनी सभ्यता, संस्कृति व समृद्ध विरासत को यूँ ही खोती रहेंगी।

पृष्ठ 77 का शेष...

विविध विधाओं में डेढ़ दर्जन से अधिक कृतियों के रचनाकार भगवान वैद्य 'प्रखर' का यह दूसरा काव्य-संग्रह है। इस संग्रह में रचनाकार ने स्वानुभूति और परानुभूति से अर्जित अनुभवों और अहसासों को आकार देने का प्रयास किया है। वर्षा की बूंदों से बनी माला को लेकर की गई रचनाकार की कल्पनाएं अद्‌भुत हैं। यह पंक्ति रचनाकार द्वारा इहलौकिक को परालौकिक से परिचित कराने का सफल प्रयास है-

'बूंदों, तुम बनी रहना अपने स्थान पर
मेरी बीवी और बेटी के आने तक।'
(मोतियों की माला, पृष्ठ-117)

विमर्श के लिए आंदोलित करती संग्रह की मुख्य कविता 'रस्सी पर चलती लड़की' की निम्न पंक्तियाँ पाठक के हृदय को स्पर्श कर जाती हैं-

'माँ की गोद में सहमी लड़की सोच रही है
इस खेल में
हर बार उसे ही क्यों चढ़ाया जाता है
रस्सी पर!'
(रस्सी पर चलती लड़की, पृष्ठ-119)

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
madhurakshar@gmail.com

शोध-लेख

दसमत कैना : लोक में अस्मिता विमर्श (संदर्भ छत्तीसगढ़ी लोकगाथा)

डॉ. मो. हसीन खान
dr.hasinkhanhindi@gmail.com

'लोक' का अर्थ बड़ा व्यापक है । इसकी व्यापकता का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि ग्रामीण जीवन में यह लोकगीतो , लोक कथाओं, लोकोक्तियों आदि के माध्यम से लोक -साहित्य के रूप में वाचित परम्परा द्वारा आज भी संरक्षित है। वाशुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में-''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है उसमें भूत- भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता हैं, लोक राष्ट्र का अमर- स्वरूप है।'' माना कि आधुनिक जीवन- पद्धति ने इसे कुछ हद तक प्रभावित किया है, परन्तु इसकी व्यापकता के सामने वह भी निरीह-सा है। वह इस लिए कि 'लोक' जीवन के लिए अमृत है,और यही अमृत ग्रामीण जीवन में उसके संस्कारों आचारों और विचारों कों जीवित बनाए रखता है।

छत्तीसगढ़ में देवार एक घुमंतू जाति है। वे मुख्यतः गीत,नृत्य के माध्यम से अपनी आजीविका चलातें है। देवार गाथा गायकों द्वारा '' दसमत कैना '' की गाथा मोहक और रसीले अंदाज में लोक वाद्य रूंझू[1] (यह वाद्य वायलिन - सारंगी सदृश्य है) के साथ गायी जाती है । वर्तमान में यह विलुप्ति के कागार पर है , क्यो कि देवार जाति की नई पीढ़ी इस गायन विद्या से कटी हुई है । '' दसमत कैना'' की गाथा न प्रेमाख्यान है, न वीरगाथा , न ही यह कोई विस्मय भरी रोमांच कथा है । छत्तीसगढ़ की घुमंतू देवार जाति के लोगो द्वारा गाई जाने वाली लुप्त प्राय लोक गाथा प्रतिरोध के उन केन्द्रो की ओर इशारा करती है, जो दमित अस्मिताओं की मुक्ति - कामना और छटपटाहट के चलते सक्रिय होते है । '' लोक के अंदरूनी शक्ति -विमर्श में सत्ता की अतिक्रामकता और स्वेच्छाचार के विरूद्ध निरीह जन की नैतिक दृढ़ता का आग्रह किस तरह चुनौती बन जाता है इसे यह गाथा अत्यन्त कलात्मक ढंग से व्यंजित करती है ।[2]

इसी परिप्रेक्ष्य में देखें तो छत्तीसगढी लोक गाथा ' दसमत कैना की पात्र 'दसमत' का जीवन भी आम नारी के जीवन से अलग नही है । ब्राम्हण राजा भोज की सात बेटियॉ थी उसकी सबसे छोटी बेटी का नाम 'दसमत'कैना ' था । वह अप्रतिम सुन्दर थी । एक दिन राजा भोज ने अपनी सातों बेटियों को क्रमशः बुलाकर पूछा कि तुम किसके कर्म का खाती हो , किसका नाम लेती हो -

'काखर करम के खाथस बेटी,
काखर लेथस नॉव।'

इस प्रश्न पर छः बेटियों ने कहा कि''...... पिताजी हम आप के कर्म का खाते है और आप का हि नाम लेते है । परन्तु ' दसमत कैना' का यह उत्तर कि-

'अपन करम के खाथॅव पिताजी
ईश्वर के लेथॅव नॉव।'

राजा को यह नागवार लगा। दसमत का यह उत्तर एक ऐसे पुरुष

ISSN : 2319-2178

के अहम् पर चोट थी, जिसे प्रजा अपना ईश्वर मानती है। 'दसमत कैना' ने शायद पहली गलती यही की कि लड़की भवना से ऊपर उठकर अपने कर्म उद्घोष बाप से ही नहीं, बल्कि एक राजा के सामने कर दिया। किशोरी दसमत का यह निर्भीक कथन न सिर्फ उसके विलक्षण आत्मबोध को व्यक्त करता है, बल्कि पितृसत्ता की सामंती ठसक को अप्रत्याशित चुनौती भी देता है। यही 'दसमत' के स्त्रीत्व का प्रत्थान बिन्दु है। यहीं से उसके 'करम'' की परीक्षा शुरू होती है। राजा भोज ने उसके 'करम' को परखने के लिए उसका विवाह काले-कलूटे गरीब उड़िया सुदन बिहइया के साथ कर साथ कर दिया। तब से 'दसमत' ओड़निन हुई-

'दसमत कैना
राजा भोज का ब्राम्हण के बेटी।
कुल बम्हनीन के जात।
अऊ अपन करम के कारन
पाय ओड़िया भरतार।।[3]

परन्तु दसमत ने अपने 'करम' से अपनी नियति को बदल डाला और एक नई नियति , पितृसत्ता की दृष्टि में अप्रत्याशित और अवांछित कर्म-गति प्राप्त की।[4] यह शोषण के खिलाफ दसमत का संघर्ष था, जिसमें यह अपने कर्म-कौशल से सफल हुई तथा उड़िया कबीले की मुखिया बन जाती है, जिसमें नौ लाख उड़िया हैं। जिन्हें बांध और तालाब बनाने में महारथ हासिल है। दरअसल, अज्ञान के कारण सुदन का परिवार साहूकार के द्वारा शोषण का शिकार हुआ था। हीरा कमाकर भी गरीबी में जिने के लिए विवश था। यह तो आज भी हो रहा है, कितने सूदन गरीबी को नियति मानकर सेठ-साहूकारों (पूंजीपतियों) द्वारा शोषित हो रहे हैं।

इसके आगे की गाथा में 'दसमत' के रूप-लावण्य के प्रति राजा महमदेव की आसक्ति तथा येन-केन प्राकरेण उसे अपने अधिकार में लेने का प्रबल आग्रह तथा दसमत की छटपटाहट व प्रतिरोध देखते ही बनता है। सात रानियों और भरे-पूरे परिवार के रहते हुए भी दसमत के प्रति राजा की आशक्ति को निरस्त करने का साहस सामाजिक स्तर पर असंदिग्ध दृढ़ता के साथ उठा दिखाई नहीं देता। स्वयं दसमत भी एकबारगी राजा के प्रणय-निवेदन को ठुकरा देने के बजाए उसे समझाने का प्रयास करती है। इसके लिए पहले वह राजा को उसकी हैसियत की तुलना में अपनी विपन्नता की दुहाई देती है-

''तोर मोर हावै ग कतल बंगला के
पान ग ब्राम्हन देवता
मोर गदही के दुई कान।
तोर मेर हावै ग सेज - सपूती
मोर गोदरी के अनदेख।
तोर मेर हावै ग बंदूक भाला
मोर कुदरी के मार
तोर मोर हावै ग चका-विपेया
ओरिया हे घनचार।''[5]

''अऊ बेटिया ल छोड़व बहुरिया ल छोड़ब ओ
तोर बर तजौ परान।
अऊका तोला कूंदे -कूंदे कुंदरवा
साँचा म ढोरसोनार।''[6]

दसमत कैना समझाने-बुझाने की कोशिश में राजा के ब्राहमण कुलोत्पन्न होने के गौरव और अभिजात्य का हवाला देते हुए वर्णक्रम में अपनी निम्नतर स्थिति के कारण दोनों का मेल न हो सकने के लिए तर्क रखती है-

''बारह बरस के ब्राहन राजा
मैं ओड़िनिन के जात ।''[7]

परन्तु ब्राम्हण जाति का राजा महादेव रूपसी दसमत के लिए अपनी बिरादरी को छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है । जबकि यही उच्च वर्ग छोटी जाति को धर्म से भ्रष्ट कहकर इस आड़ जाति को नीच कहता है। लेकिन रूप सौन्दर्य के आगे उनके श्रेष्ट होने का ढोंग अपने आप ही प्रकट हो जाता है। यह बिडम्बना शोषित-पीड़ित-दलित जाति के लिए नहीं, अपितु कथित उस उच्च वर्ग के लिए जो रूप -रंग और वैभव की दुनियॉ में लुकाछिपी का खेल खेलता है । अपनी श्रेष्ठता का केवल दिखावा करता है ।

दसमत ने अपने नारी धर्म का पूरी तरह निर्वाहन किया। वैसे भी पसीना बहाकर जीने वाला व्यक्ति प्रलोभनों में नहीं फॅसता। झोपड़पट्टी कभी अट्टालिकाओं के आगे नत-मस्तक नहीं होती। झोपड़पट्टी अट्टालिका से कम होती भी कहाँ है? यह तो पसीने की गंध मे नहाई हुई होती है। जबकी अट्टालिका खून से नहाई होती है। एक गरीब मेहनतकश ओड़िया स्त्री के रूप में दसमत कैना अंत में अनुनय के बजाय प्रतिवाद का रास्ता चुनती है। प्रतिवाद अन्तिम उपाय है। इसलिए लोक के दमित अस्मिताऐ प्रायः अनाक्रामक और संयत दिखई देती है। ठीक इसी प्रकार दसमत भी प्रतिरोध के आपेक्षाकृत नरम उपाय का इस्तेमाल करती है जो कि दरअसल राजा के

अभिजात्य, उसकी वर्ण श्रेष्टता पर सीधी चोट है। दसमत राजा को सुअर का मांस खाने व शराब पीने की शर्त रखती है-

''अरे मंदे-मांस ल खावे राजा
जब लगवे मोर साथ। ''[8]

गाथा के एक अन्य पाठ में एक बुजुर्ग ओडिया स्त्री राजा के सामने इस तरह की शर्त रखती है-

''हमर जाति के बेटी बनावे।
अऊ खाते मंद मांस।
तब ओडिनिन ल पावे राजा
अइसे तय नहीं पास।''[9]

कहना की आवश्यकता नहीं है कि यह एक कठिन शर्त थी। लेकिन प्रणयांध राजा अपनी जाति और सामाजिक प्रतिष्ठा खोने को भी तैयार है। वह शर्त मंजूर कर लेता है। प्रतिरोध का यह अस्त्र भी विफल हो जाने पर दसमत अन्ततः कठोर उपाय अपनाने के बाध्य होती है। उसे सूअर का मांस खिलाकर, शराब पिलाकर, बेसुध कर खटिया पर लिटा देती है। उसके बालों को गदही की पूंछ से बांधकर गदही को हकाल देती है। गदही ही पूंछ से बंधकर घिसटता राजा सबकी हँसी का पात्र बनता है-

''गदही के पूछी ल
झीक के देवय बांध।
दू कोड़ा गदही ल पीटेगा
चार कोड़रा राजा ल
ढेलवानी म दिसे कुहाय।''[10]

उपहास यहाँ प्रतिरोध का अस्त्र है। लोक-संस्कृति के अध्येता मानते है कि- ''लोक जिन स्थितियों का अनुकूल नही बना पाता या बदल नही पाता, उपहास का विषय बना देता है।'' [11]

यह प्रसंग प्रेमचंद के गोदान में मातादीन सिलिया प्रसंग की याद दिलाता है। मातादीन सिलिया के अनुलोम संबन्ध को ब्राम्हण समुदाय स्वीकार नही करता, लेकिन दलित भी उसे सहजात से नहीं स्वीकारते। वे मातादीन को खूब पीटकर उसके मुंह में हड्डी का टुकड़ा डालकर उसका ठीक उसी रिति से दलितीकरण करते है। जिस रीति से उड़िया-जन राजा महदेव को मांस-मदिरा का सेवन कराते हुए अपने समुदाय में दीक्षित करते है। दोनों प्रसंगों में प्रतिरोध की पद्धति में जो एक रूपक दिखाई देता है। क्या उससे लोक की स्वातंत्र्य कामना के सर्वमान्य होने का संकेत नही मिलता क्या ? इससे यह अनुमान नहीं होता कि लोक के भीतर वर्णवाद विरोधी चेतना प्राक-आधुनिक और औपनिवेशिक स्थितियों में भी निरन्तर सक्रिय रही है ?

इस प्रतिवाद के बाद जाहिर है कि दसमत और नौ लाख ओड़िया की खैर नहीं। वे उस स्थान को छोड़कर 'सुरहीडीह' चले जाते हैं। राजा उनका पीछा करता है। दसमत के स्वजन परिजन महदेव की सेना के हाथों मारे जाते हैं। उसका पति सूदन बिहइया भी गोली का शिकार हो जाता है। पर ''दसमत सब कुछ खोकर भी अपने स्वभिमान, मान, मर्यादा , और अस्मिता की रक्षा के लिए प्राण प्रण से जुटी रही''[12] आगे दसमत कैना की परिणिति तो और भी दुखद होती है। पति के लाश के निकट ही राजा की उपस्थिति उसकी असहायता की पराकाष्ठा बन जाती है। ऐसे में दसमत राजा से कहती है- ''पहले मैं अपने पति का अंतिम संस्कार कर लूँ, फिर तुम मुझे ले जाना।'' इस तरह बहाने बनाकर दसमत कैना अपने पति की चिता में स्वयं कूद पड़ती है, और अपनी अस्मिता की रक्षा करती है-

''अरे बरत आगी म दसमत रानी मईया रे
अऊ सत्ती गेईन हे झपाय।
अऊ बरत आगी म ओड़निन कैना, अपन
बिहाता संग मईया सत्ती गीत झपाय ''[13]

दसमत का सती होने का प्रसंग, एक भिन्न स्तर पर राजा के स्वेच्छाचार की प्रतिक्रिया है। गाथाकार मुख्यतः इसी पर बल देता है। आत्मविसर्जन यहाँ आत्मरक्षा का आखिरी उपाय बन जाता है। इसे अलाउद्दीन के आक्रमण से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पद्मिनी के देह-त्याग के ऐतिहासिक प्रसंग के साथ रखकर पढ़ें, तो दोनों में अद्भुत समानता दिखई देती है। ओडार बांध में चित्तौड़ की तरह जौहर का दृश्य है। बांध की अथाह जलराशि में नौ लाख उड़िया डूब मरते हैं। अथवा एक अन्य पाठ में राजा के साथ युद्ध करते हुए प्राण न्योछावर कर देते हैं।

भारतीय स्त्री की नियति दोनों प्रसंगों में पितृसत्ता के सर्वसत्तावाद से जुड़ी दिखई देता है। यह पुरुष-प्रपंच की शिकार स्त्री की कथा है। इतिहास का सच यहा गाथा का सच बन जाता है। कहना न होगा कि यही समाज का सच है। दसमत अपनी यौनता की स्वतंत्र पहचान और उसकी रक्षा के लिए द्रोपदी की तरह संघर्ष करती है, पर अन्ततः सावित्री की नियति को प्राप्त होती है। यही उसकी त्रासदी है। अतएव 'दसमत कैना' की यह गाथा एक दमित स्त्री की संघर्ष कथा है। जो श्रम, जाति और वर्ण पर

आधारित निम्नतर सामाजिक-अस्मिता के प्रतिरोध को नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करती है।

संदर्भ-

1- निरंजन महावर - नारी मोनोग्राथ देवार – म. प्र. आदिवासी लोककला परिषद् से साभार।
2- जयप्रकाश - लोक मड़ई 2004 लोकमड़ई उत्सव समिति आलीवारा जिला राजनांदगाँव।
3- लोकगाथा गायक चिंतादारा वंजारे , ग्राम घोटिया बड़ईटोला राजनाद गाव के पाठ से।
4- दसमत अपने पति व देवर के साथ उनके झोपड़े में पहुँच गयी सूदन ने दसमत को बताया कि वे पत्थर तोड़कर जुगनू निकालते हैं, और उसे महाजन को देते हैं। बदले महाजन उन्हें राशन देते हैं, जिससे जीविका चलती है। काले-कलूटे उड़िया पत्थर तोड़ते -तोड़ते और काले पड़ गये थे। एक दिन दसमत कैना ने कहा कि स्वामी! आप एक जुगनू छिपाकर ले आना। मैंने आज तक जुगनू नहीं देखा है। दूसरे दिन सूदन विहइया और उसका छोटा भाई लच्छन एक-एक जुगनू को धोती में बांधकर ले जाते हैं। दसमत की आँखें चौधियॉ गईं।दसमत ने बताया कि यह जुगनू नहीं, हीरा है। मुझे उस महाजन के पास ले चलो। दोनो भाई उड़िया महाजन के पास पहुँचे। महाजन दसमत के प्रश्नों से निरूत्तर हो गया, और दसमत से माफी मांगने लगा। बिना मांगे ही बहुत सारी संम्पत्ति दसमत को देकर विदा करता है। दसमत उस सम्पत्ति से सुंदर मकान बनवाती है। और अपने बुद्धि से सुखपूर्वक जीवन व्यतीतकरती है।
5- सोनऊ राम निर्मलकर देवारो की लोकगाथाएं।
6- भैसवार देवार के पाठ से - संकलनकर्ता - खुमानलाल साथ दलेश्वर साहू।
7- चैतराम देवार के पाठ से - संकलनकर्ता- पी. सी. लाल यादव।
8- चैतराम देवार के पाठ से - संकलनकर्ता- पी. सी. लाल यादव।
9- चैतराम देवार के पाठ से - संकलनकर्ता- पी. सी. लाल यादव।
10- सोनऊ राम निर्मलकर - देवारों की लोक गाथाएं (शोध-कृति), पृष्ठ-45
11- चैतराम देवार के पाठ से - संकलनकर्ता- पी. सी. लाल यादव।
12- बद्रीनारायण मूक जीवन का भाष्य शीर्षक लेख, मड़ई-1999, सं. डॉ. कालीचरण यादव, रावत नाव महोत्सव समिति, बिलासपुर (छत्तीसगढ़), पृष्ठ-19
13- चैतराम देवार के पाठ से - संकलनकर्ता- पी. सी. लाल यादव।

कृति-चर्चा

जीवनानुभवों पर तार्किक चिंतन-मनन भटका हुआ परिंदा

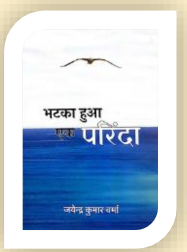

भटका हुआ परिंदा @ जयेन्द्र कुमार वर्मा, हिन्द युग्म, दिल्ली, सं. 2018

विविध भाव-भूमियों पर सृजित 92 लघुकथाओं के इस संग्रह में जयेन्द्र जी ने मानव जीवन में दम तोड़ रही संवेदनशीलता पर प्रश्न उठाने का सफल प्रयास किया है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। बढ़ती सामाजिक बुराइयों से लेखक व्यथित दिखाई देता है। उसी व्यथा की परिणति हैं इस संग्रह की लघुकथाएं। इस संग्रह में संकलित कुछ लघुकथाओं से मेरा पूर्व परिचय था, इनका प्रकाशन 'मधुराक्षर' में हो चुका था। इन लघुकथाओं ने जितना आज से सात वर्ष पूर्व प्रभावित किया था, उतना ही आज भी किया। संग्रह की अधिकांश लघुकथाएं पाठक को चिंतन-मनन के लिए विवश करने में समर्थ है। अनेक लघुकथाओं का आधार समाचार-पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित घटनाएं हैं, जिनके बारे में लेखक आरंभ में ही पाठक को बता देता है। जिन लघुकथाओं ने अधिक प्रभावित किया उनमें- घाटा, दवा, हेल्प, डर, समालोचना, सास-बहू, चादर मैली हो गई, चोट, बाढ़, गिद्ध, बेटियाँ बड़ी हो रही हैं, दोष, जीविका, पेट पर लात, दान, कुछ भी नहीं गया, लौटता विश्वास इत्यादि हैं। इन लघुकथाओं के चरित्र आस पास ही विचरते दृष्टिगत होते हैं। अनेक लघुकथाएं ऐसी हैं, जो हृदय को व्यथित करने में समर्थ हैं। निःसंदेह यह लेखक का रचना-कौशल है जो पाठक को रचना में समाहित कर लेता है।

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
madhurakshar@gmail.com

शोध-लेख

स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्रभा खेतान की आत्मकथा का वैचारिक महत्व

नीरजा दुबे
dubeyshweta84@gmail.com

हिन्दी के समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में, प्रभा खेतान का एक प्रखर विचारक और सक्रिय स्त्रीवादी लेखिका के रूप में विशिष्ट स्थान है। प्रभा खेतान की रचनात्मकता वैविध्यपूर्ण तथा बहुआयामी है। उनकी ख्याति कथा लेखिका, कवयित्री, अनुवादक एवं सम्पादक के रूप में रही है। प्रभा खेतान ने समकालीन वैश्विक एवं स्थानीय चुनौतियों के संदर्भ में भारतीय समाज के बहुरंगी यथार्थ को अपने साहित्य में चित्रित किया है। उनका लेखन आधुनिक स्त्री की त्रासदी, संघर्षशीलता और मुक्तिकामी चेतना को गहरी संवेदना और विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत करता है।

प्रभा खेतान का पहला उपन्यास 'आओं पेपे घर चलें' (1990), में प्रकाशित हुआ। इसके उपरान्त तालाबन्दी (1991), छिन्नमस्ता (1993), अपने अपने चेहरे (1994), पीली आँधी (1996) तथा अग्निसंभवा (2002) उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। आओ पेपे घर चलें विश्व संदर्भ में नारी की नियति को पहचानने और उद्घाटित करने का एक उल्लेखनीय सर्जनात्मक प्रयास है। तालाबन्दी में आज के पूंजीवादी दौर में पारिवारिक सम्बंधों के तनाव तथा पीढ़ियों के संघर्ष का अंकन हुआ है। 'छिन्नमस्ता' और 'अपने अपने चेहरे' उपन्यासों में मारवाड़ी व्यावसायिक परिवार, समाज, परंपरा और संस्कृति के विविध आयामों और अन्तर्विरोधों को उद्घाटित करने के साथ ही इस समाज में स्त्री के जीवन और संघर्ष की कथा का गहरी संवेदना और विश्वसनीयता के साथ चित्रण किया गया है। पीली आँधी और अग्निसंभवा में समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों और उनके माध्यम से व्यक्ति और समाज की व्यथा कथा को केन्द्र में रखा गया है। अग्निसंभवा में उत्तर औपनिवेशिक परिवर्तनों और भूमंडलीकरण के परिणामों के स्त्री जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को चित्रित किया गया है। प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार अनेक प्रकार के सजीव पात्रों से भरा हुआ है। उनके स्त्री पात्रों में सदियों से चली आ रही शोषण और उत्पीड़न की स्थितियों का सामना करने की शक्ति दिखती है। उनके स्त्री पात्र आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने, परंपरागत नारी संहिता की जकड़न को चुनौती देने, शैक्षिक-सामाजिक दृष्टि से समर्थ होने की दिशा में अग्रसर और संघर्षरत दिखाई देते हैं।

प्रभा खेतान की प्रसिद्धि केवल कथाकार के रूप में ही नहीं है बल्कि उन्होंने भारतीय समाज में उपनिवेशित स्त्री के शोषण, मनोविज्ञान एवं मुक्ति के संघर्ष पर विचारोत्तेजक लेखन भी किया है। इस दृष्टि से प्रभा खेतान ने समकालीन वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में 'उपनिवेश में स्त्री' तथा 'बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ' जैसी उल्लेखनीय स्त्रीवादी रचनाएं भी लिखी हैं। उन्होंने सीमोन द बोउवार की विश्व प्रसिद्ध कृति 'सेकंड सेक्स' का हिन्दी में 'स्त्रीः उपेक्षिता' नाम से अनुवाद किया है। प्रभा खेतान ने 'एक और पहचान' तथा 'हंस' के स्त्री विशेषांक 'भूमंडलीकरण : पितृसत्ता के नये रूप' का सम्पादन किया है। उनकी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' को एक बेबाक और निर्भीक आत्म स्वीकृति की साहसिक गाथा के रूप में प्रशंसा मिली है।

आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का प्रतिबिम्ब होती है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में स्वयं को स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली 'अन्या' माना है। 'अन्या' से तात्पर्य जो दूसरों से पालित है। स्त्री स्वयं को पिता के घर से लेकर पति के घर तक के रास्ते को कितनी भी चतुराई और संघर्ष से तय करती हो किन्तु पुरूष मानसिकता से ग्रस्त समाज उसे अपने द्वारा ही पोषित समझता है। 'स्त्री अन्या है ऐसी विचारधारा केवल पुरुष वर्ग में नहीं बल्कि दुनिया की शेष आधी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा भी स्वयं को हमेशा से ही अपने-अपने परिवारों की छत्रछाया में पलने-बढ़ने वाली एक कोमल सुकुमार लता बनकर जीने में अधिक गर्व महसूस करता है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में स्त्रियों को यह संदेश देने का प्रयास किया है कि स्त्री केवल कमजोर तने वाली बेल या लता नहीं जिसे हमेशा ही किसी-न-किसी सहारे की आवश्यकता बनी रहे। स्त्री चाहे तो वह अपने आत्मबल के द्वारा सफलता की चोटी को भी स्पर्श कर औरों के लिए भी एक मार्ग प्रशस्त कर सकती है। अन्या दूसरे का बोझ समझी जाती है लेकिन प्रभा स्वयं अन्या से अनन्या बनकर यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री केवल एक निरीह प्राणी नहीं जिसे हमेशा किसी न किसी सहारे की आवश्यकता ही पड़ती रहे।

स्त्री जितने संघर्ष और आत्मबलिदान से सफलता के शिखर को स्पर्श करती है उसके साथ उतनी ही अधिक से अधिक भ्रामक आधारहीन तथ्य भी गढ़े जाते हैं। प्रभा खेतान की आत्मकथा इस प्रकार के न जाने कितने ऐसे गंभीर प्रश्नों को बड़ी सरलता से समाधान प्रस्तुत करने की सामर्थ्य रखती है। वैश्विक स्तर पर स्त्री विभिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रतिमान स्थापित कर रही है लेकिन पुरूष मानसिकता का शिकार समाज उसका मूल्यांकन पूरी ईमानदारी से नहीं करता। प्रकृति के नियमों के अनुकूल यदि स्त्री पुरूष को प्रेम करती है तो पुरूष उस स्त्री को कामान्ध और बिगड़ैल जैसी उपाधियाँ देता है किन्तु वह अपने दैनिक जीवन में महिला के प्रति आकर्षण को तर्कसंगत ठहराने से नहीं चूकता। प्रबुद्ध स्त्रीवर्ग एवं वर्तमान स्त्री विमर्श पुरूष के इस दावे को एक सिरे से नकारतीं हैं जो तर्कसंगत भी है।

स्त्री जितने संघर्ष और आत्मबलिदान से सफलता के शिखर को स्पर्श करती है उसके साथ उतनी ही अधिक से अधिक भ्रामक आधारहीन तथ्य भी गढ़े जाते हैं।

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री पक्ष की उन विभ्रांतियों को बहस के केन्द्र में लाना चाहती हैं जो पुरूष वर्ग में सदियों से व्याप्त है। समाज स्त्री को केवल पत्नी के रूप में ही मान्यता देता है यदि वह सम्बन्धित व्यक्ति से एक मित्र या प्रेमिका के रूप में जुड़ी हो तथा वह स्नेह और प्रेम के पैमाने का कितनी भी ईमानदारी से स्पर्श करती हो लेकिन समाज की दृष्टि में उसे बेशर्म और असमाजिक स्त्री ही कहा और जाना जाता है। प्रभा अपनी व्यापारिक यात्रा पर अपने प्रेमी डॉ0 सर्राफ के साथ न्यूयार्क मंे जिस अपमान और जलालत को महसूस करती हैं वह उनके शब्दों में दृष्टव्य है। वे लिखती हैं- "मैं क्या लगती थी डॉक्टर साहब की? मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली आई? प्रियतमा, मिस्टेªस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती क्यांेकि एक पत्नी पहले से मौजूद थी। वे बाल-बच्चों वाले व्यक्ति थे। पिछले बीस सालों से मैं उनके साथ थी मगर किस रूप में...? इस रिश्ते को... नाम नहीं दे पाऊँगी। भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई? प्रेम तो सभी करते हैं। प्रेम करने वाली स्त्री, माँ, बहन, पत्नी वह कुछ भी हो सकती है या फिर सीधे-सीधे रखैल कहो ना। रखैल का क्या अर्थ हुआ? वही जिसे रखा जाता है, जिसका भरण-पोषण पुरूष करता हो। लेकिन डॉक्टर साहब मेरा भरण-पोषण नहीं करते, उनसे मैंने कभी कोई आर्थिक सहायता नहीं ली। मैं तो खुद कमाती थी, स्वावलम्बी थी, एक आत्मनिर्भर संघर्षशील महिला थी।"[1]

आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का दर्पण होती है। उदार हृदय और पूरी ईमानदारी से तथ्यों को प्रकट करना तब और भी कठिन हो जाता है जब व्यक्ति परम्परा की दीवार तोड़ने का प्रयास करता है। उसमें भी एक महिला द्वारा लीक से हटकर नये प्रतिमान स्थापित करने की कोशिश करती है। सच्चे अर्थों में आत्मकथा लेखन तलवार की धार पर चलने जैसा है। प्रभा खेतान का डॉक्टर सर्राफ के प्रति आकर्षण भले ही ऐहिक रहा हो किन्तु समाज उसे केवल दैहिक प्रेम से अधिक और किसी अन्य रूप में

 ISSN : 2319-2178

स्वीकार नहीं करता। इसी स्थान पर यदि पुरूष, स्त्री के सम्बन्ध में कुछ कहता है या उसे दैहिक वासना के लिए उकसाता है तो स्त्री इसे प्रेम का स्वरूप मानकर पुरूष में उदात्त प्रेम को खोजती है। लेकिन संभावित रूप से वह ठगी जाती है। स्त्री-पुरूष के बीच अनगढ़-अपरिभाषित प्रेम को न समझने की स्थिति को स्पष्ट करती हुई प्रभा खेतान लिखती हैं- ''मुझे आज तक पता नहीं चल पाया कि प्रेम का कौन-सा गणित है? औरत-मर्द के रिश्ते की क्या यह जैविक अनिवार्यता है या फिर इसमें नियति का हाथ मानें?''[2]

प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में एक साथ स्त्री जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दों को बहस के लिए उठाया है। भ्रूण अवस्था से ही स्त्री के अस्तित्व पर संकट मँडराने लगता है। भ्रूण में पल रहा शिशु यदि मादा है तो समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा उसे अवांछित गर्भ मानकर उससे छुटकारा पाने का प्रयास करता है किन्तु वर्तमान में सामाजिक जागरण, शिक्षा एवं शासन द्वारा इस दिशा में किये गये कुछ प्रयासों ने इसमें सुधार की गुंजाइश पैदा की है। दूसरी समस्या तब उत्पन्न होती है जब स्त्री का जन्म होता है। उसके रख-रखाव से लेकर उसकी शिक्षा के मानकों में समाज द्वारा भेद-भाव किया जाता है। एक बालिका के लिए पृथ्वी पर तब बहुत बड़ी त्रासदी होती है यदि वह अपने माता की तीसरी-चौथी बालिका संतान है। उस पर भी काला रंग, परिवार के लिए उसके विवाह को लेकर बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। प्रभा अपने बचपन का स्मरण करती हुई लिखती हैं- ''मैं उपेक्षिता थी, आत्म सम्मान की कमी ने मेरा जिन्दगी भर पीछा किया। भला नीची हैसियत के लोगों की प्यार भरी तारीफों का, उनकी कमजोर राय का मेरी जिन्दगी में क्या मायने था। माँ ने प्यार नहीं किया, यह तो समझ रही थी, क्योंकि मैं ठहरी काली। माँ की तरह गोरी नहीं। मैं बहुत शान्त, गीता की तरह स्मार्ट नहीं, मुँह पर फटाफट जबाब नहीं दे पाती, लेकिन मैं पढ़ने में अच्छी थी, क्या यह काफी नहीं था?''[3] प्रभा अपनी बहनों गीता, पुष्पा से छोटी थी और अपने साँवले रंग के कारण भाई-बहनों से हमेशा उपेक्षित महसूस करती रहीं। कोलकाता में रहते हुए प्रभा के परिवार को मारवाड़ी होने के कारण सामाजिक उपेक्षा और भय में जीना पड़ा। अपने स्वयं के परिवार से उपेक्षित होने के बाद विद्यालय के प्रारम्भिक दिनों में भी वे तिरस्कृत महसूस करतीं रहीं। वे लिखती हैं- ''स्कूल में पार्वती बहन जी को, मारवाड़ी लड़कियों से बेहद चिढ़ थी। अधिकतर टीचर बंगाली थीं, बड़ी बहनजी तो अच्छी-खासी हिन्दी बोल लेंती थी। लेकिन संगीत की टीचर, सेवा बहन जी और गणित की टीचर पार्वती बहन जी मुझसे बहुत चिढ़तीं।''[4] एक लड़की के लिए ऐसा उपेक्षापूर्ण वातावरण उसको हीनता का शिकार बनाने का बहुत बड़ा कारण है। प्रभा अपने बचपन को याद करती हुई कहती हैं- ''कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घण्टों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद... हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।''[5]

''कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घण्टों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद... हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।''

संतान अपनी माँ से जितनी अपेक्षा रखे और माँ उसकी अपेक्षा के प्रति असावधान रहे और बदले में उपेक्षा को व्यवहृत करे तो संतान में खीझ और परिवार के प्रति असंवेदनहीन समझ के अलावा और किसका विकास हो सकता है। प्रभा अपने बचपन से ही मातृत्व से वंचित रखी गई। मूलतः इसके कारण कई थे। एक तो वे अपने पिता की अन्तिम संतान थी, दूसरा उनका रंग साँवला, तीसरा कारण भावुकता के साथ वे तुरन्त, जवाब देने को तैयार रहती थीं। उस पर भी दसवीं में पन्द्रह वर्ष के लक्षण माँ को अधिक चिड़चिड़ा बनाने में मदद कर रहे थे। अचानक पिता की मृत्यु हो जाने पर प्रभा के लिए पारिवारिक परिस्थितियाँ कुछ ज्यादा ही जटिल हो गईं थी। एक मारवाड़ी परिवार में जहाँ माँ पढ़ी-लिखी न हो वहाँ

तत्कालीन समय में लड़की का पीरियड्स आना घृणा और पाप का कारण माना जाता। प्रभा अपने पिता की मृत्यु से सर्वाधिक प्रभावित हुई। अपने किशोरवय में एक तरफ परिवार के अर्थसंकट से जूझ रहीं थी वहीं दूसरी ओर बंगाल में आपात कालीन और गृहयुद्ध जैसे हालातों के कारण मानसिक द्वन्द्वों से लगातार चिन्तित रहीं। भारत-चीन युद्ध के दौरान देश में जो परिस्थितियाँ बनीं उनमें सर्वाधिक उथल-पुथल बंगाल में थी। अपने कालेज के प्रारम्भिक दिनों में प्रभा ने राजनीति, समाज, अर्थ और परिवार के सम्बन्ध में जो अवधारणा विकसित की उसमें स्त्री का संघर्ष और उसमें भी अपनी जमीन से उखड़ी स्त्री का जीवन और अधिक नारकीय होता है।

प्रभा खेतान के सिर से जब पिता का प्यार का हाथ उठा तो वे अपने बड़े भाई के लिए एक बोझ की तरह थीं। जिसके परिणामस्वरूप बड़े भाई ने प्रभा को नौ साल की उम्र में अपनी हबस का शिकार बनाया। अपनी पारिवारिक परिस्थिति के बीच उन्होंने अपनी शिक्षा को जारी रखा, जिसके लिए उन्हें तमाम समस्याओं से जूझना पड़ा। इसी बीच उनका सम्पर्क नेत्र चिकित्सक डॉक्टर सर्राफ से हुआ, और वे उनसे इतना प्रभावित हुईं कि आजीवन उनके सानिध्य में दूसरी स्त्री बनकर जीने के लिए प्रतिबद्ध हो गयीं। अपने विदेश प्रवास के दौरान उनका सम्पर्क दुनिया के अलग-अलग कोनों से सम्बन्धित महिलाओं आइलिन, मि0 डी, कैथी, एलिजा, मरील, हैल्गा आदि से हुआ, इन महिलाओं के जीवन की बुनावट को प्रभा ने बड़ी गम्भीरता से देखा, जिसके कारण उन्होंने स्त्रियों की सार्वभौमिक स्थिति को विश्लेषित किया। स्त्री के लिए स्त्री होना पर्याप्त नहीं? उसे पुरूष की माँ, बहन, पत्नी होना आवश्यक है? क्या स्त्री की अपनी निजी कोई पहचान नहीं? जैसे प्रश्नों पर प्रभा का गंभीर चिंतन समाज को आत्ममंथन के लिए विवश करता है। प्रभा खेतान सन् 1966 से 1990 के बीच उभरे नव धनाढ्य जो स्वयं को आधुनिक समझते उनकी स्त्रियों के प्रति सोच को स्पष्ट करतीं हुई लिखतीं हैं- "इन लोगों की नजर में स्त्री की एक आदर्शवादी छवि थी। ये कस्तूरबा, भगिनी निवेदिता जैसे सफेद लिबास में पाक-पवित्र स्त्री की कल्पना से आक्रान्त थे। स्त्री यदि विवाह न भी करे तो सामाजिक कामों में जुटी हुई स्त्री की तस्वीर को ही ये आदर्श मानते थे। यदि उक्त स्त्री के जीवन में कुछ गलत हो तो भी सब कुछ दबा ढका ही रहना चाहिए। स्त्री की किसी अलग पहचान से ये आतंकित हो उठते। लकीर से हटकर चलने वालों के प्रति ये कठोर थे।"[6]

प्रभा खेतान ने अपने निजी जीवन में जितने संघर्षों को सहा वे सभी उनके यथार्थ अनुभव के रूप में स्थापित हुए। डॉ. सर्राफ के प्रति आकर्षण के प्रति प्रभा गंभीर थीं, लेकिन डॉ. के गैर जिम्मेदार एवं उदासीन व्यवहार से प्रभा लगातार अपने आप से जूझती रहीं। भारतीय पुरूष वर्ग में विशेष तौर पर यह गुण प्रमुखता से देखा जाता है कि वह स्त्री को अपनी इच्छा के अनुकूल प्रयोग तो करना चाहता है किन्तु वह स्त्री से सम्बन्धित प्रत्येक तथ्य को गोपनीय तरीके से पर्दे के पीछे रखना चाहता है। इस स्थान पर वह स्वयं के, परिवार के पक्ष में अधिक मुखर रहता है। एक प्रेमिका और दूसरी पत्नी को वह तभी सामाजिक स्तर पर तैयार कर पाता है, जब वह अपनी पूर्व प्रेमिका या पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद कर दे। सम्बन्ध विच्छेद न होने की स्थिति में वह दूसरी स्त्री को केवल और केवल पर्दे के पीछे सामाजिक नजरों से स्वयं को बचाकर एक आदर्श पुरूष का स्वांग गढ़ता है। अगर हम यह तथ्य प्रस्तुत करें कि भारतीय दंड सहिता पहली पत्नी के होते हुए किसी अन्य महिला से सम्पर्क की अनुमति नहीं देता तो भी पुरूष का अव्यवहारिक दृष्टिकोण ही इसके लिए उत्तरदायी है। कानून एवं संविधान से बचने के लिए पुरूष स्त्री को अपने वैभव के आकर्षण में उलझाकर केवल उसे भोग्या जैसी वस्तु भर मानता है। यहाँ हम यह भी स्पष्ट कर दें कि पुरुष के इस वैचारिक परिवेश के बीच स्त्री आज भी उसमें देवत्व की स्थापना का प्रयास करती है।

कानून एवं संविधान से बचने के लिए पुरूष स्त्री को अपने वैभव के आकर्षण में उलझाकर केवल उसे भोग्या जैसी वस्तु भर मानता है।

स्त्री की वैश्विक छवि को विश्लेषित करने वाली प्रभा खेतान समाज की दृष्टि में हमेशा स्त्री को दोयम दर्जे की ही मानती हैं भले ही वह स्त्री होने के साथ-साथ क्यों न कुछ और ही हो। डॉ. सर्राफ के प्रति अपने उदात्त प्रेम एवं इस प्रेम के बदले उनके व्यवहार की उग्रता, प्रतिहिंसा हमेशा उन्हें कचोटती रहती। डॉ. सर्राफ के मित्र द्वारा यह पूछे जाने पर कि आखिर तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? इस प्रश्न

ने प्रभा को अन्दर तक झकझोर दिया और वे लिखतीं हैं- ''उद्देश्य...। उद्देश्य का अर्थ ? मैंने पूछा था। यानि आदर्श यानी एक नक्शा जिसके सहारे गन्तव्य पर पहुँचना सम्भव होता है, उनका बड़ा नपा-तुला उत्तर है। लेकिन मैंने तो शुरू से ही गलत नक्शा थाम रखा है, तब क्या मैं कभी अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँच ही नहीं पाऊँगी? चाहे जितनी मेहनत करूँ, चाहे जितनी अपनी गति तेज कर लूँ, क्या मेरे जीवन का नक्शा नहीं बदलेगा ? अपनी तमाम ईमानदारी, अपनी कुल आशावादिता के बावजूद क्या मुझे मेरी मंजिल का पता नहीं मालूम पड़ेगा ?''[7]

प्रभा खेतान का नारीवादी चिंतन आज के समाज के लिए भले ही स्वच्छद नारी का विमर्श मानता है लेकिन स्त्रियों की स्वतन्त्रता की अवधारणा बहुत प्राचीन है। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को ने केवल स्वतंत्रता थी बल्कि उन्हें अनन्या के रूप में सम्मान भी प्राप्त था। वे अपने लिए योग्य एवं अनुकूल वर का चुनाव भी करतीं थीं, सामाजिक मुद्दों पर स्त्रियों के फैसले महत्वपूर्ण और प्रभावी थे। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के माध्यम से एक संघर्षशील स्त्री को भावात्मक स्तर पर ही सुदृढ़ बनाने का प्रयास करती हैं बल्कि सामाजिक स्तर पर उन्हें एक स्थाई सम्मानित स्थान प्राप्त करने के लिए मुखर बनने की प्रेरणा देतीं हैं। प्रभा खेतान अपने साहित्य के द्वारा जिस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहतीं हैं वह सावित्री जैसी वैदिक कालीन स्त्री की आकांक्षा के अनुरूप है। गौतम ऋषि द्वारा अपने व्रतों-उपवासों को लेकर जिज्ञासा किए जाने पर सावित्री जवाब देती हैं- ''मैं मानती हूँ कि विवाह के उपरान्त पति-पत्नी के एक हो जाने पर भी उनका (स्वयं का भिन्न) अस्तित्व रहता है। उनके अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्माएं होती हैं। पति-पत्नी एक निश्चित उद्देश्य के लिए जीवन साथी बनते हैं परन्तु उनके शरीर, मन और बुद्धि की अपनी विशेषताएँ तो होती ही हैं।''[8]

''मैं मानती हूँ कि विवाह के उपरान्त पति-पत्नी के एक हो जाने पर भी उनका (स्वयं का भिन्न) अस्तित्व रहता है। उनके अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्माएं होती हैं। पति-पत्नी एक निश्चित उद्देश्य के लिए जीवन साथी बनते हैं परन्तु उनके शरीर, मन और बुद्धि की अपनी विशेषताएँ तो होती ही हैं।''

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रभा खेतान की आत्मकथा नारी विमर्श में स्त्री के अधिकारो की वकालत करती है। वे अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री की स्वच्छंद विचारधारा को ही पूर्णतः स्वीकार नहीं करती है अपितु नारी के लिए एक स्वच्छ-नैतिक एवं सम्मान जनक यथार्थ को समाज द्वारा अंगीकृत किये जाने के पक्ष में हैं। स्त्री केवल पत्नी, स्त्री, बहन, माँ आदि पारंपरिक सबंधों की आकांक्षी नहीं है, बल्कि वह अब अनन्या बनकर जीवनयापन करने में भी सक्षम है। वर्तमान स्त्री विमर्श जहाँ नारी की स्वच्छता को ही उसके अस्तित्व के लिए पर्याप्त और आवश्यक मानता है वहीं प्रभा खेतान का साहित्य स्त्री को पारंपरिक चौखटे से निकालकर उसे वैदिक कालीन स्त्री के सन्दर्भ से जोड़ने का प्रयास करता है। जहाँ स्त्री स्वच्छंता, स्वतंत्रता एवं विद्ववत्ता के शीर्ष आदर्श स्थापित करने में सफल ही नहीं हुई बल्कि उसने जो तत्कालीन परिस्थितियों में पैमाने स्थापित किए वे आज की स्त्री के लिए एक आदर्श हैं। पुरुषवादी मानसिकता में स्त्रियोंको कमजोर, अन्या एवं परजीवी की तरह स्थापित करने का जो क्रम सदियों तक चलता रहा प्रभा खेतान उन सबके विरूद्ध हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य स्त्री को संवेदनशील, संघर्षशील एवं चुनौतियों से निरंतर टकराने के सामर्थ्य से युक्त एक विचारशील स्त्री के रूप में स्थापित करने में सफल रहा है।

सन्दर्भः-

1- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ: 09
2- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ: 74
3- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ: 26
4- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ: 31
5- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ: 31
6- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठः 245
7- अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठः 249
8- समीक्षा, अंकः अक्टूबर- दिसम्बर, 2013 संपादक- सत्यकाम, पृष्ठः 15

खामोशियों की भी जुबान होती है!

रंग जो छूट गया था @ कुँअर रवीन्द्र, अनंग प्रकाशन, दिल्ली

हमारे समय के प्रख्यात चित्रकार कुँअर रवीन्द्र से एक चित्रकार से रूप में तो सभी परिचित हैं, लेकिन वे जितने अच्छे चित्रकार हैं, उतने अच्छे कवि भी हैं। अपने चित्रों की तरह ही खामोश रहकर बोलने वाले कवि !चित्रों के बरक्स वे कविताएं कम लिखते हैं और उनको पाठकों तक पहुँचाने में भी संकोच करते हैं। उनके धैर्य और संकोच का अंदाजा आप ऐसे लगा सकते हैं कि लगभग कालेज की उम्र से कविताएं लिखने और चित्र बनाने वाले कुँअर रवीन्द्र का पहला कविता' -संग्रह रंग जो छूट गया था', लगभग साठ वर्ष की उम्र में आया है। इस कविता संग्रह में कुल इक्यानबे रंगबिरंगी कविता-एं हैं । ये कविताएं उन रंगों से रची गई हैं जो रंग उनके चित्रों से छूट गए थे, या कहिए इन कविताओं के माध्यम से कुँअर रवीन्द्र , जो बातें अपने चित्रों में नहीं कह पाए उन्हें शब्दों में ढालकर कविता के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इन कविताओं में उन्होने जीवन के विभिन्न रंगों को अपने अनुभव के ताप में ढाल करके, मनुष्य के कठिन होते जा रहे जीवन और उनके रंग-विहीन होते जा सपनों में रंग भरने का काम किया है। कुँअर रवीन्द्र की कविताएं उनके जमीनी अनुभव एवं वैचारिक संघर्ष उपजी हुई कविताएं हैं उनकी काव्यात्मक भावभूमि और रचनात्मक अनुभवों का सटीक मिश्रण हैं उनकी कविताएंवे अपनी ! कविताओं में मानवीय जीवन केसंघर्ष को बाखूबी बयान करते हैं। और वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों, वर्गीय विभेद , पीडा द्वंद, आमजन के टूटते-बिखरते सपनों का मुकम्मल दस्तावेज हैं उनकी कविताएं। वे अपनी कविताओं में वायवीय संवेदनाओं को भरने के बजाय आम आदमी की संवेदनाओं से भरपूर एक रागात्मक चित्र बनाना चाहते हैं। आदमी का कोई चित्र नहीं बनता, कविता में वे कहते हैं-

'क्योंकि सबकुछ है आदमी में
बस आदमी में आदमी नहीं है
शायद इसीलिए
आदमी का कोई चित्र नहीं बनता।'

खुद को कटघरे में खडा करना सब के बस की बात नहीं है। आदमी में आदमीयत को ढूंढते-ढूंढते वे खुद से ही सवाल करने लगते हैं-

'मैं
आदमी कब था
मुझे याद नहीं
हाँ, अब
मैं एक कैलेंडर हो गया हूँ।'

ये सभी जानते हैं कि वे अपने चित्रों में आम आदमी के सुख दुख उकेरेने वाले चित्रकार हैं। उनकी कविताएं भी विसंगतियों के बीच घिरे हुए आम आदमी की आवाज है, और इस आवाज को वे जब शब्दों में ढालकर कविताएं रचते हैं तो वे कविताएं आम आदमी के पक्ष में खडा एक सार्थक बयान होती हैं-

'मैं खेतों की बात नहीं करता
मैं खलिहानों की बात नहीं करता
मैं रोटी की बात करता हूँ
रोटी के हक की बात करता हूँ।'

पूँजीवाद और लोकतंत्र के मनुष्य विरोधी नापाक गठबंधन ने मानव जीवन को बाजार की धधकती भटठी में झोंक दिया है और इनके जाल में फॅसा आदमी छटपटाते हुए मर रहा है। पूँजीवाद ने लोकतंत्र को भी नहीं बख्सा है, वे लोकतत्र को ऐसे मरता हुआ नहीं देखना चाहते, बल्कि उसे बचाना चाहते है-

'मरते हुए लोकतंत्र का
अब खाली हाथ और
नारों से नहीं बचाया जा सकता
दीवारों पर टॅगी तस्वीरों को
अब बदल देना चाहिए।'

कुँअर रवीन्द्र की कविताएं मानवीय अष्मिता की खोज की महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। उनकी कविताओं में व्यवस्था की चक्की में पिस रहे आम आदमी की बौखलाहट, गुस्सा और जिजीविषा छिपी हुई है। वे उनकी आकांक्षाओं को आवाज देते हुए कहते हैं-

'ज्वालामुखी धधक रहा है
भीषण ताप,
भीतर का पानी
सुखा चुका है
जंगल एक बार तुम फिर हरियाओ
संसद में कालीनों की जगह
हरियर घास बिछाओ।'

बढ़ते शहरीकरण ने आज गांवों की जा दुर्दशा की हैं वे किसी से छिपा नहीं है। आज गाँव खंडहरों में तब्दील होकर रह गए हैं। कुँअर रवीन्द्र इन स्थितियों से बाखूबी परिचित हैं, और उनके बिखराव से खुद भी अछूते नहीं हैं-

'शान्ति और अपनत्व की तलाश में गया था
दारू और टी.वी. पी गई आदमी को
आदमी की आदमीयत को
आज शोपीश की तरह
सिर्फ कल्पनाओं में रह गया है मेरा गाँव
या फिर कमरे में लटके कैलेण्डर में।'

वे हमारे चारों तरफ फैली समस्त नकारात्मक प्रवृत्तियों का वे प्रतिरोध करते हैं। समाज में कोढ़ की तरह व्याप्त साम्प्रदायिकता को लेकर नेताओं की पैंतरेबाजी से वे भलीभाँति परिचित हैं। इसे वे किसी एक मजहब या धर्म न जोडकर देखने की बात करते हैं । साम्प्रदायिकता की राजनीति करने वालों को वे आगाह करते हैं-

'उनकी शक्ल न हिंन्दुओं जैसी है
न मुसलमानों जैसी
ये सिर विहीन लोग हैं।'

समाज में व्याप्त कुहासे को चीरने की आशा भी वे आम आदमी से ही करते हैं। वे जानते हैं कि आम आदमी की जिजीविषा, संघर्ष और बिखरकर खड़े होने की क्षमता से ये कुहासा एक न एक दिन छंट जाएगा। उनकी आशा के केन्द्र देश के आम नागरिक ही है-

'लोग
मेरे लोग
इस देश के लोग
खेतों, खलिहानों, कारखानों में
खटने वाले लोग
अभी
नदी के पार हैं।

ये लोग
पुल बनाना
और पुल तोड़ना भी जानते हैं।'

वे अपनी इसी बात को आगे बढ़ाते हुए आशान्वित हैं कि वह सुबह कभी तो आएगी जब समाज में फिर समरसता होगी, भेदभाव खत्म होंगे, कोई ऊँच-नीच नहीं होगा। वे इन्हीं उम्मीदों को जिंदा रखने वाले कवि

हैं, और आम आदमी को हमेशा उम्मीद का दामन थामे रहने की बात करते हैं-

'उसके लिए उम्मीद ही बड़ी चीज है
और यही उम्मीद उसे ऊर्जा व शक्ति देती है
कि वह सुबह कभी तो आएगी।'

कुँअर रवीन्द्र बड़ी खामोशी से रचनारत रहने वाले चित्रकार एवं कवि हैं। वे कविताएं कम लिखते हैं, और अपने को कवि भी नहीं मानते। प्रायः कविता पाठ करने से भी बचते रहते हैं। आज जब प्रतिबद्धता-विहीन लोग लोक-विरोधी सरोकारों से साथ खुद को कवि घोषित कराने के लिए तमाम हथकंडे अपनाते घूम रहे हैं। ऐसे समय में भी कुँअर रवीन्द्र जैसे वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध एक बड़े कवि का खुद को कवि न मानने का साहसिक एवं निरपेक्ष संकोच स्तुत्य है। आत्ममुग्धता के कठिन दौर में ये बड़े साहस का काम हैं, और ऐसा साहस कुँअर रवीन्द्र जैसे प्रतिबद्ध रचनाकार ही कर सकते हैं। बड़ी खामोशी और प्रतिबद्धता से रचनारत ऐसे रचनाकार के लिए के शब्दों में बस यही कहा जा सकता है कि 'खामोशियों की भी जुबान होती है!'

समीक्षक
प्रेम नंदन
premnandanftp@gmail.com

कृति-चर्चा

परिवर्तित होते रिश्तों पर केंद्रित उपन्यास सपनों की होम डिलिवरी

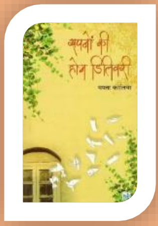

सपनों की होम डिलीवरी @ ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

असफल रिश्तों और पारिवारिक टूटन के दंश को झेलने के उपरांत आख़िर अपने सपनों की होम डिलीवरी उपन्यास की नायिका रुचि पा ही लेती है। इस उपन्यास में लेखिका स्वाभाविक और व्यावहारिक जीवन-तथ्यों के माध्यम से पाठक को जोड़े रखने में सफल होती हैं। स्वाभाविकता का एक दृश्य द्रष्टव्य है- "घर की हवा में तनाव का पता बार-चल रहा था। रुचि यहां से वापस जाना चाहती थी लेकिन उसे रुख़सत के लफ़्ज नहीं मिल रहे थे। खामोशी से उठ जाना भी हिमाकत होती।" (पृष्ठ-50)

समाज में सभी के जीवन की गाथाएं प्रायः एक जैसी ही होती हैं, इस तथ्य को ममता कालिया उपन्यास की नायिका के माध्यम से सहजता से प्रस्तुत करती हैं- "रुचि को शिद्दत से लग रहा था जैसे यह उसके अपने घर-परिवार की पटकथा है जो बदले हुए नामों से लिखी जा रही हूं। (पृष्ठ-52)

समाज में आधुनिकता के बढ़ते प्रसार के बावजूद भारतीय समाज में लिव-इन जैसे रिश्तों की स्वीकार्यता नहीं है, इसे भी लेखिका स्पष्ट करते हुए लिखती है- "सहजीवन (लिव-इन) एक नितांत अस्थायी, अस्थिर और असंगत अनुबंध है जिसमें पुरुष से ज्यादा स्त्री का नुकसान है।" (पृष्ठ- 54)

उपन्यास में नायिका के टूटते-बिखरते रिश्ते अंततः नए और सुखद स्वरूप में उसे प्राप्त होते हैं। रिश्तों में आशावादी दृष्टिकोण भी दिखाई देता है- "रिश्तों में इतनी जान है कि वे प्लेट-प्यालों की तरह नहीं टूटते। हम हर बार उनमें पट्टी बांधकर काम चला लेते हैं। सपनों की होम डिलिवरी पठनीय और संग्रहणीय उपन्यास है जो पाठक को इस बात के लिए विवश करने में समर्थ है कि वह इसे एक ही बैठक में समाप्त करे।

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
madhurakshar@gmail.com

जुआरी

गुलाम अब्बास

(उर्दू के प्रसिद्ध कहानीकार गुलाम अब्बास का जन्म नवंबर 17,को अमृतसर में हुआ था। राष्ट्रीय .ई 1909 , अंतरराष्ट्रीय स्तर की अनेक सम्मनोपाधियों से सम्मानित गुलाम अब्बास की कई कहानियों का चित्रांकन किया गया, जिनमें 'मंडी' फिल्म विशेष चर्चित रही। नवंबर 02,में इनका देहावसान हो गया। (पाकिस्तान) को कराची .ई 1982)

पुलिस ने ऐसी होशियारी से छापा मारा था कि उनमें से एक भी बचकर नहीं निकल सका था और फिर जाता भी तो कहाँ, बैठक का एक ही ज़ीना था जिस पर पुलिस के सिपाहियों ने पहले ही क़ब्ज़ा जमा लिया था। रही खिड़की, अगर कोई मनचला जान की परवाह न करके उसमें से कूद भी पड़ता तो अव्वल तो उसके घुटने ही सलामत न रहते और बिलफ़र्ज़ (मान लीजिए) ज़ियादा चोट न आती तो भी उसे भागने का मौक़ा न मिलता क्यूँकि पुलिस के निस्फ़ (आधा) दर्जन सिपाही नीचे बाज़ार में बैठक को घेरे हुए थे। और यूँ वो सबके-सब जुआरी जिनकी तादाद दस थी, पकड़ लिए गये थे।

इत्तिफ़ाक़ से उस दिन जो जुआरी उस बैठक में आये थे उनमें एक-दो पेशेवरों को छोड़कर बाक़ी सब कभी-कभार के शौक़िया खेलनेवाले थे और यूँ भी इज़्ज़तदार और आसूदाहाल (ख़ुशहाल) थे, एक ठेकेदार था, एक सरकारी दफ़्तर का ओहदेदार, एक महाजन का बेटा था, एक लारी ड्राइवर था, एक शख़्स चमड़े का कारोबार करता था।

उनमें दो शख़्स ऐसे भी थे जो बेगुनाह पकड़े गये थे। उनमें एक तो मनसुख पनवाड़ी था। हर चन्द वो कभी-कभी खेल भी लिया करता था, मगर उस शाम वो क़तअन (बिल्कुल) उस मक़्सद से वहाँ नहीं गया था। वो दुकान पर एक दोस्त को बैठाकर दस के नोट की रेज़गारी लेने आया था। रेज़गारी ले चुका तो चलते-चलते एक खिलाड़ी के पत्तों पर नज़र पड़ गयी, पत्ते ग़ैर मामूली तौर पर अच्छे थे। ये देखने को कि वो खिलाड़ी क्या चाल चलता है। ये ज़रा-की-ज़रा रुका था कि इतने में पुलिस आ गयी। बस फिर कहाँ जा सकता था।

दूसरा शख़्स एक उम्ररसीदा (उम्रदराज़) वसीक़ानवीस (दस्तावेज़-लेखक) था जो ठेकेदार को ढूँढ़ता-

ढूँढ़ता उस बैठक में पहुँच गया था। ठेकेदार से उसकी पुरानी साहब-सलामत थी और वो चाहता था कि ठेकेदार उसके बेटे को भी छोटा-मोटा ठेके का काम दिला दिया करे। ये वसीक़ानवीस कई दिन से ठेकेदार की तलाश में सरगर्दा (हैरान, परेशान) था। आख़िर मिला भी तो कहाँ, जहाँ ठेकेदार को न तो खेल से फ़ुर्सत थी और न उसे इतने आदमियों के सामने मतलब की बात कहने का यारा। ठेकेदार खेल में मुनहमिक (मग्न, तल्लीन) था और वसीक़ानवीस इस सोच में कि वो कौन-सी तरकीब हो सकती है जिससे ये खेल घड़ी भर के लिए थम जाय और दूसरे सब लोग उठकर बाहर चले जायें, मगर इस क़िस्म की कोई सूरत उसे नज़र न आती थी। इधर ठेकेदार था कि घण्टों से बराबर खेले चला जा रहा था। आख़िर वसीक़ानवीस मायूस होकर चलने की सोच ही रहा था कि इतने ही में पुलिस आ गयी और जुआरियों के साथ उसे भी धर लिया गया।

उन दोनों ने अपनी बेगुनाही के बहुतेरे सुबूत पेश किये मगर पुलिस ने एक न सुनी, बाक़ी के लोग पुलिस के इस अचानक धावे से ऐसे दम-बख़ुद (चुपचाप) रह गये थे कि मुँह से एक लफ़्ज़ तक न निकला। सिपाहियों ने बड़ी होशियारी के साथ पहले सबको बैठक से नीचे उतारा, फिर उनके गिर्द घेरा डाल उन्हें पैदल थाने ले चले।

ये भी ग़नीमत हुआ कि झुपटा वक़्त था। धुँधलके में ज़ियादा लोगों की नज़र न पड़ी और ये लोग कोट के कॉलर या पगड़ी के शिमले (पगड़ी में पीछे की तरफ़ लटकता हुआ भाग) में मुँह छुपाये, तेज़-तेज़ क़दम उठाते हुए जल्दी थाने पहुँच गये जहाँ थानेदार के हुक्म से उन सबको हवालात में बन्द कर दिया गया।

हवालात की यकसूई (एकान्त, एक तरफ़) में जब उन लोगों को तमाशाइयों की अशाहज़ा भरी नजरों और सिपाहियों के कड़े तेवरों और करख़्त (कठोर, कर्कश) लहजों से अमान (शान्ति, सुकून) मिली और जान-पहचान के लोगों से मुठभेड़ का ख़ौफ़ भी न रहा तो क़ुदरती तौर पर सबसे पहले उनका ध्यान बैठक के मालिक की तरफ़ गया जो उन सबके साथ ही हवालात में बन्द था। हर शख़्स को अपनी बर्बादी का बाइस (कारण) समझता था। चुनांचे सबको उस पर सख़्त गुस्सा आ रहा था। अगर ये शख़्स एहतियात को काम में लाता, मकान को सराय न बना लेता कि हर ऐरा-ग़ैरा मुँह उठाये चला आ रहा है, बैठक के बाहर किसी मुख़बिर का इन्तज़ाम करता, नीज़ (या, अथवा) पुलिसवालों से अपने तअल्लुक़ात ख़ुशगवार रखता तो उन सब लोगों पर बुरा वक़्त कभी न आता। ये शख़्स दरमियाने क़द और छरेरे बदन का था। शरबती आँखें जिनमें सुरमे के डोरे।

बैठक के मालिक का नाम तो ख़ुदा जाने क्या था मगर सब लोग उसे नक्कू कहा करते थे। सफ़ेद रंगत छोटी-छोटी मूँछें, चेहरे पर चेचक के मिटे-मिटे से दाग़, दाँत पानों के कसरते-इस्तेमाल (अधिक प्रयोग) से सियाही माएल सुर्ख़ हो गये थे। घुँघराले बाल जो हर वक़्त आँवले के तेल में बसे रहते। बायीं तरफ़ से माँग निकली हुई। दायीं तरफ़ के बाल एक लहर की सूरत में पेशानी पर पड़े हुए, मलमल का कुर्ता जिसमें सोने के बटन लगे हुए, गले में छोटा-सा सोने का तावीज़ सियाह डोरे में बँधा हुआ, उसका कुर्ता हमेशा उजला हुआ मगर धोती अमूमन मैली, सर्दियों में इस लिबास पर एक पुराना सुर्ख़ दोशाला ज़री के हाशियेवाला ओढ़ लिया करता। उसकी हरकात ('हरकत' का बहुवचन) में बला की फ़ुर्ती थी। जितनी देर में कोई मश्शाक़-से-मश्शाक़ (अभ्यस्त-से-अभ्यस्त) जुआरी एक दफ़ा ताश फेंटे और बाँटे ये उतनी देर में कम-से-कम दो दफ़ा ताश फेंटता और बाँट लेता था।

नक्कू पहले ही इस हमले के लिए तैयार था। पुलिस के छापा मारने से लेकर उस वक़्त तक तो उसने चुप साधे रखी थी और सारे क़िस्से में उसका रवैया एक बेगाने का-सा रहा था, मगर अब जबकि हर तरफ़ से उस पर तेज़ नज़रों से हमले शुरू हुए तो उसने एक झुरझुरी ली और अपनी मुदाफ़अत (बचाव) में एक लतीफ़ मुस्कुराहट, जिसमें ख़फ़ीफ़-सी ख़ुशी भी मिली हुई थी, अपने होंठों पर तारी की। ये मुस्कुराहट चन्द लम्हे क़ायम रही। फिर उसने निहायत इत्मीनान के साथ सब पर एक नज़र डाली और बड़ी ख़ुदएतमादी (आत्मविश्वास) के लहजे में कहा- "आप लोग बिल्कुल भी फ़िक्र न करें। आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि आपमें से किसी का बाल भी बीका न होगा। मेरे हाँ पिछले पाँच बरस में आज तक ऐसा नहीं हुआ था। इसे तो, क्या कहना चाहिए मज़ाक़ समझो मज़ाक़।"

जुआरियों ने नक्कू की इस बात को सुना पर इससे उनके गुस्से में ज़रा भी कमी न हुई। बाज़ (कुछ) ने गर्दन हिलायी। बाज़ ने बाज़ू झटक दिये।

"हूँ, मज़ाक़ समझें, ये अच्छी रही।" ठेकेदार ने कहा।

"लाहौल विला क़ूवत...." चमड़े के सौदागर ने ज़रा चमककर कहा- "अजीब आदमी हो यार, यहाँ लाख

की इज़्ज़त ख़ाक में मिल रही है और तुम इसे मज़ाक़ बता रहे हो।"

"नाराज़ क्यूँ होते हो शेख़ जी, मैंने जो कहा आपका बाल भी बीका न होगा। मूँछों पर ताव देते निकलोगे मूँछों पर ताव देते।"

"चल हट लपाड़िया कहीं का।" ठेकेदार ने कहा।

"लपाड़िया कौन, मैं ?" नक्कू ने तुनुककर कहा- "ख़ैर जो जी में आये कह लो मगर मैं फिर कहता हूँ कि तुममें से किसी पर आँच तक न आयेगी।" वो जुआरी जो किसी सरकारी दफ़्तर में अकाउंटेंट था उसे जुए से सख़्त नफ़रत थी मगर जब कभी उसकी बीवी बच्चों को लेकर मैके जाती तो उसे उस बैठक ही की सूझती। दफ़्तर से उठकर सीधा वहीं का रुख़ किया करता। हर बार हारता और अपने को कोसता, अहद (संकल्प, इरादा) करता कि कभी न आऊँगा, मगर अगले रोज़ सबसे पहले पहुँचता।

उस शख़्स ने नककू की ये बात सुनी-अनसुनी करके फ़रियाद के लहजे में कहना शुरू किया- "अरे भाई मैं लुट गया। मैं सरकारी आदमी, मेरी इज़्ज़त दो कौड़ी की हो गयी। हाय मेरे बीवी-बच्चे, नको ने मुझे बर्बाद कर दिया, हाय।"

"सुनो तो सही मलिक साहब।"

"अरे क्या ख़ाक सुनूँ, हाय वो कौन सा मनहूस दिन था जब मैंने तेरी सूरत देखी, अरे यारो मैं सरकारी मुलाज़िम (कर्मचारी)। अगर मेरे दफ़्तरवालों के कान में भनक भी पड़ जाये तो बदनामी, अरे बदनामी को तो गोली मारो, यहाँ पन्द्रह बरस की मुलाज़िमत (नौकरी) से हाथ धोने पड़ें, हाय मेरे बीवी-बच्चे...."

महाजन का बेटा जिसने दौलत कमाने का ये सहल और दिलचस्प तरीक़ा नया-नया सीखा था। अब तक बड़े ज़ब्त (सब्र) से काम ले रहा था मगर मलिक का ये वावेला सुनकर एकबारगी दहाड़ें मारकर रोने लगा। सब लोग उसकी तरफ़ मुतवज्जेह (ध्यानाकृष्ट) हो गये।

"सब्र करो छोटे शाह जी सब्र करो।" नक्कू ने कहा- "तुम तो यार औरतों की तरह रोने लगे। मर्द बनो, अरे भाई ये तो बात ही कुछ नहीं है।"

"मेरे पिता जी को पता चल गया।" महाजन के बेटे ने सिसकियाँ लेकर कहा- "तो वो एकदम मुझे घर से निकाल देंगे।"

"अरे यार छोड़ो भी, कोई घर से न निकालेगा।" नक्कू ने कहा।

"नक्कू" मलिक ने कहा- "ये सब तेरा किया-धरा है।"

"मलिक साहब" नक्कू ने पुरज़ोर लहजे में कहा- "आप बिल्कुल भी परेशान न हों। आप मेरी बात मानें, मैं जो कह रहा हूँ कि आप पर ज़रा आँच नहीं आयेगी। यूँ निकाल लाऊँगा जैसे मक्खन में से बाल निकालते हैं।"

"बस रहने दे भाई" मलिक ने मलामत आमेज़ लहजे में कहा- "अगर यही दमख़म था तो पुलिस को आने ही क्यूँ दिया होता।"

"मलिक साहब आप मेरी बात मानें। मैं आपसे सच कहता हूँ। आपका बाल भी बीका न होगा। बात अस्ल में यूँ है कि थानेदार अपना ही आदमी है। समझे आप, वो मेरा बड़ा मेहरबान है। वो आपको कुछ नहीं कहेगा। मेरे मुँह पर थूक देना अगर कुछ कहा।"

बात अस्ल में यूँ है कि थानेदार अपना ही आदमी है। समझे आप, वो मेरा बड़ा मेहरबान है। वो आपको कुछ नहीं कहेगा। मेरे मुँह पर थूक देना अगर कुछ कहा।"

नक्कू की बात सुनकर सब जुआरी पल भर को ख़ामोश कुछ सोचते रहे। बाज़ (कुछ) तो डूबते को तिनके का सहारा के मिसदाक़ (चरितार्थ) इस बात पर यक़ीन कर लेना चाहते थे और बाज़ के चेहरे से ज़ाहिर होता था जैसे वो कुछ फ़ैसला नहीं कर सके कि उन्हें नको पर भरोसा करना चाहिए या नहीं। अलबत्ता ये ज़ाहिर है कि रफ़्ता-रफ़्ता उनका गुस्सा उतरता जा रहा था।

"देखो नक्कू" चमड़ेवाले शेख़ जी ने कहा- "मैं सौ-पचास की परवाह नहीं करता, मगर मेरी इज़्ज़त बच जाये। वैसे बात तो कुछ भी नहीं और यूँ ख़ुद मेरा बहनोई सब इंस्पेक्टर पुलिस है मगर तौबा-तौबा ये किसी से कहनेवाली बात है।"

"शेख़ जी आप ज़रा भी चिन्ता न करें। मैं जो कह रहा हूँ इसे आप मज़ाक़ ही समझें। कभी-कभी दिल्लगी कर लिया करता है मेरा यार।"

"कौन" मनसुख पनवाड़ी के मुँह से बेसाख़्ता निकल गया। वो इतने बड़े-बड़े आदमियों को इस मुसीबत में अपना साझी देखकर अपना दुख भूल गया था।

"अजी यही आपके थानेदार साहब बहादुर।" यह कहकर नको हँस पड़ा।
वो जुआरी जो लारी चलाता था कोने में खड़ा कुछ देर नक्कू को बहुत ग़ौर से देखता रहा। फिर उसके क़रीब आया और उसकी आँखों में आँखें डालकर निहायत संजीदगी के साथ कहने लगा- "देखो नको ! मुझे सुबह-सवेरे लारी में ख़ुश्क मेवा भरके दूर ले जाना है। ठेकेदार मेरा इन्तिज़ार कर रहा होगा। अगर तेरी वाक़ई यहाँ किसी से वाक़िफ़ीयत (जान-पहचान) है तो कोई ऐसी तरकीब कर कि मैं सुबह से पहले-पहले यहाँ से ख़लासी (मुक्ति, छुटकारा) पा जाऊँ।"

यूँ तो धीरे-धीरे सभी लोग आख़िरकार नक्कू की बातों पर कान धरने लगे थे, मगर उस लारी ड्राइवर ने जिस लहजे में नक्कू से ख़िताब (सम्बोधित) किया उसने क़तई तौर पर नक्कू के साथियों में उसका इक़्तिदार (अधिकार, सत्ता) क़ायम कर दिया। नक्कू ने भी इसे महसूस किया और अपनी इस कामयाबी पर उसकी आँखें चमक उठीं। अलबत्ता लारी ड्राइवर ने जमात (समूह, ग्रुप) से अलहदा होकर तनहा अपनी ज़ात (व्यक्तिगत) के लिए जो सिफ़ारिश की थी, उसको सबने नापसन्द किया और उसे लारी ड्राइवर की ख़ुदग़रज़ी और कमीनगी पर महमूल (समझा गया) किया गया।

नक्कू ने, जिसके लहजे में और भी ज़ियादा ख़ुदएतमादी (आत्मविश्वास) पैदा हो चुकी थी, लारी ड्राइवर से बड़े सरपरस्ताना (संरक्षकत्व) अन्दाज़ में कहा- "मिर्ज़ा जी, मेरी जान घबराओ नहीं, उसका भी इन्तिज़ाम हो जायेगा।"

"इन्तिज़ाम-विन्तिज़ाम ख़ाक नहीं होगा।" अचानक वसीक़ानवीस ने झल्लाकर कहा- मिर्ज़ा तुम भी इस डींगिये की बातों में आ गये। जो सर पर पड़ी है उसे ख़ुद ही भुगतो।"

नक्कू ने वसीक़ानवीस के इस ग़ैरमुतवक़्क़ो (अप्रत्याशित) हमले को बड़ी चाबुकदस्ती से रोका। वो खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"लो बड़े मियाँ की बात सुनो।" उसने कहा- "हूँ, इन्तिज़ाम नहीं होगा और यहाँ जो माल खिलाया जाता है हर महीने। भाइयो ! मैं फिर कहता हूँ कि इसे मज़ाक़ ही समझो। मैं हिन्दू-मुसलमान वाली क़सम खाके कहता हूँ कि किसी का बाल भी बीका न होगा। वो यूँ कि थानेदार अब क्या बताऊँ तुम्हें..." वो हँस पड़ा- "कह जो दिया अपना ही आदमी है। अब तुम कहलवा के ही रहोगे। पर ज़िकर-विकर (ज़िक्र-विक्र) न कर बैठना किसी से वरना फँस जाओगे मेरा दोष नहीं होगा। वो बात यूँ है कि थानेदार, अब तुमसे क्या छुपाऊँ, भई मेरी उसकी रिश्तेदारी है। सुन लो, क्यूँ बड़े मियाँ अब तो हो गयी तसल्ली। इतना नहीं समझते कि अगर ऐसी बात न होती तो पिछले पाँच बरस से इतने बड़े शहर में ये धन्धा भला कैसे चलता रहता।" नक्कू ने अपने चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी। इक़्तिदार की इमारत पहले से कहीं ज़ियादा मुस्तहकम (अटल, अचल) हो चुकी थी।

उन जुआरियों में एक शख़्स था जिसके बुशरे (चेहरा) से कोई सदमा या रंज ज़ाहिर नहीं होता था। वो उस सारे वाक़िए के दौरान में बिल्कुल ख़ामोश रहा था। वो अट्ठाइस बरस का एक दुबला-पतला नौजवान था। लिबास और वज़अ-क़तअ (शक्ल-सूरत) की तरफ़ से ख़ासा (बहुत) बेपरवाह मालूम होता था। मुद्दत हुई उस शख़्स ने ना तजरबाकारी (अनुभवहीनता) की वजह से एक ख़ासी माक़ूल रक़म हारी थी। बस उसी दिन से ये अहद कर रखा था कि जिस रोज़ हारी हुई रक़म को वापस जीत लूँगा, जुए का फिर कभी नाम न लूँगा। उस बैठक में आने से घंटे-दो-घंटे पहले किसी बाग़ में बैठकर खेल का एक प्रोग्राम-सा बना लिया करता। चालें तक सोच रखता, बेहद एहतियात से खेलता, न ताव खाता न जोश में आता। मगर बदक़िस्मती से हारी हुई रक़म रोज़-ब-रोज़ बढ़ती ही चली जा रही थी और उसके साथ-साथ उसका क़र्ज़ भी।

उस शख़्स को रुस्वाई या क़ैद और जुर्माने का तो ज़रा ग़म न था। अलबत्ता इस बात की फ़िक्र ज़रूर थी कि ये सबके सब डरपोक हैं, बच गये जब भी और फँस गये जब भी, उस बैठक का रुख़ न करेंगे।

इधर नक्कू ने हालात पर पूरा क़ाबू पा लिया था। अगरचे (यद्यपि) वो रात-रात में किसी की मुख़लिसी (कुछ भी देना या दिलाना) का भी इन्तिज़ाम नहीं कर सका था। ताहम (फिर भी) उसने किसी-न-किसी तरह हर शख़्स को ये यक़ीन दिला दिया था कि थानेदार अगर उसका क़रीब का नहीं तो दूर का क़राबतदार (नज़दीकी) ज़रूर है और सुबह होते ही उन्हें रिहा कर दिया जायेगा। चुनांचे सब लोग ज़मीन पर वो फटे-पुराने बदबूदार कम्बल बिछाकर जो सिपाहियों ने ला दिए थे, निचिन्त से होकर पड़ रहे।

"ओहो, ग़ज़ब हो गया।"अचानक नक्कू ने कहा और वो लेटे-लेटे उठकर बैठ गया।

"क्यूँ क्यूँ ख़ैर तो है ?" अँधेरे में जुआरियों ने पूछा।

"भई अगर पता होता कि यहाँ रात काटनी पड़ेगी तो ताश साथ लेते आते और मज़े से सारी रात खेलते। कहो तो अभी किसी सिपाही को भेजकर ताश और मोमबत्ती मँगा लूँ ?"

"न न बाबा मुआफ़ करो।" कई आवाज़ें एक साथ सुनायी दीं।

"तुम जानो" नक्कू ने बेपरवाई से कहा गोया ऐसा न करने में उन्हें नुक़सान है। "वरना अच्छी-ख़ासी दिल्लगी रहती। सुबह को थानेदार को सुनाते तो वो भी ख़ूब हँसता।"

अगले रोज़ सुबह को कोई नौ बजे के क़रीब एक सिपाही हवालात के सलाख़दार दरवाज़े के बाहर आ खड़ा हुआ और बुलन्द आवाज़ से पुकारकर कहने लगा- "ओ जुआरियों उठो, तुम्हारी दारोग़ा साहब के सामने पेशी है।"

जुआरी देर से इस हुक्म के मुन्तज़िर (प्रतीक्षारत) थे। सबकी नज़रें बे इख़्तियार नक्कू की तरफ़ उठ गयीं। नको नज़रें तिरछी करके एक ख़ास अदा से मुस्कुरा दिया। दारोग़ा साहब के कमरे में सबने पहुँचते ही सलाम दाग़ा, मगर दारोग़ा उनको सरसरी नज़र देखकर काम में मसरूफ़ हो गया। उस पर नज़र नहीं पड़ी या फिर उसने दानिस्ता नज़रें फेर लीं और वो सिपाहियों की बारकों में चला गया।

"नक्कू वसीक़ानवीस ने तान आमेज़ लहजे में कहा- "मैं जानूँ थानेदार की तुम पर नज़र नहीं पड़ी वरना वो तुम्हारे सलाम का जवाब ज़रूर देता।"

"अजी तौबा करो" नक्कू ने कहा- "थानेदार मेरे सलाम का जवाब कभी नहीं देगा। भाई वो इस वक़्त रोब में है रोब में, क्या समझे ! थानेदारी है कुछ मज़ाक़ थोड़ा ही है। हमसे सीधे मुँह बात करते तो सिपाहियों पर रोब कैसे जमा रहे। कल को यही सिपाही उसको नाक चने न चबवा दें और सिपाही तुम जानो मदारी के बन्दर की तरह होते हैं कि जब तक लाठी नज़र आती रहे डुगडुगी पर नाचते रहते हैं, जहाँ मदारी ने ज़रा ढील दी बस लगे ऐंठने, सर पर सवार..."

पाँच मिनट बाद थानेदार चन्द सिपाहियों के साथ बातें करता हुआ बारकों में से निकला और उन जुआरियों के पास पहुँचा। जब थानेदार वापस आ रहा था तो नको ने एक बार फिर से सलाम किया। थानेदार घूरकर उसकी तरफ़ देखा और फिर तेज़-तेज़ क़दम उठाता हुआ दफ़्तर में चला गया।

"कहा था ना" नक्कू ने फ़तहमंदाना (विजयी भाव) लहजे में कहा- "मेरे सलाम का जवाब नहीं देगा। क्यूँ देता जवाब ?"

सब जुआरी ख़ामोश रहे।

"एक दिन" नक्कू ने फिर कहना शुरू किया- "थाने में बस वो और मैं ही थे, कोई सिपाही आसपास नहीं था। बस फिर क्या था। इतनी गुदगुदियाँ कीं कि हँसा-हँसा के बुरा हाल कर दिया।"

थानेदार कोई आठ घण्टे तक दफ़्तर के अन्दर ही रहा। ये लोग फिर बेसब्र हो चले थे कि इतने में वही सिपाही जिसने सुबह आकर पेशी की इत्तिला दी थी, दफ़्तर से निकला और सीधा उनके पास आकर अपने अक्खड़ लहजे में कहने लगा- "ओ जुआरियो सुनो, दारोग़ा साहब ने हुक्म दिया है कि तुम सब-के-सब धोती पाजामा खोलकर ज़मीन पर एक क़तार में औंधे लेट जाओ। फिर तुममें से सिरेवाला आदमी एक-एक करके उठे और हर एक के दस-दस जूते लगाके ख़ुद दूसरे सिरे पर औंधा लेटता जाये। ग़रज़ इसी तरह सब के सब बारी-बारी हर एक के दस-दस जूते लगायें।"

थानेदार का ये हुक्म इतना ग़ैरमुतवक़्क़ो (अप्रत्याशित) था कि सब जुआरी हक्का-बक्का रह गये और सरासीमा (व्याकुल, परेशान) होकर सिपाही का मुँह तकने लगे।

"उल्लुओं की तरह मेरा मुँह क्या तक रहे हो। अगर हुक्म समझ में न आया हो तो फिर सुना दूँ ?" ये कहकर जवाब का इन्तिज़ार किये बग़ैर सिपाही ने वही अल्फ़ाज़ दुहरा दिये।"

इस पर वसीक़ानवीस और मनसुख पनवाड़ी बेइख़्तियार आगे बढ़कर सिपाही के क़दमों से लिपट गये।

"ख़ान साहब हम बिल्कुल बेक़ुसूर हैं।" उन्होंने एक ज़बान होकर गिड़गिड़ाकर कहा- "ये सब लोग गवाही देंगे कि हम बिल्कुल बेगुनाह हैं। जिस वक़्त पुलिस आयी हम न तो खेल रहे थे और न इस इरादे से वहाँ गये थे। हम बेगुनाह हैं। ख़ुदा जानता है कि हम बिल्कुल बेक़ुसूर हैं।"

"मैं कुछ नहीं कर सकता।"सिपाही ने कहा- " दारोग़ा साहब का हुक्म यही है।"

"ख़ान साहब जी आपकी बड़ी मेहरबानी होगी। आप हमारी तरफ़ से हाथ जोड़कर हुज़ूर से कह दें कि

हम दोनों बेगुनाह पकड़े गये हैं। ये सब लोग इस बात की गवाही देते हैं।"

"मैं गवाही-ववाही कुछ नहीं जानता।" सिपाही ने कहा- "दारोग़ा साहब ने सबके लिए यही हुक्म दिया है। हाँ और सुनो। उन्होंने कहा कि अगर ये लोग राज़ी न हों तो इन सबको फिर हवालात में बन्द कर दिया जाय।"

वसीक़ावीस और मनसुख दोनों मायूस होकर फिर क़तार में आ खड़े हुए। उनका ये अंजाम देखकर किसी जुआरी को लब हिलाने की जुर्रत न हुई और वो सख़्त परेशान होकर एक दूसरे का मुँह तकने लगे। उनकी समझ में न आता था कि क्या किया जाये। उनकी नज़रें बार-बार नक्कू पर पड़ती थीं, मगर वो उनकी तरफ़ नहीं देख रहा था। उसकी नज़रें थाने के दफ़्तर की दीवारों पर गड़ी हुई थीं जो गोया दीवारों को छेदती हुई थानेदार को ढूँढ़ निकालना चाहती थीं।

"देखो-देखो" सिपाही ने कहा- "तुम लोग देर कर रहे हो। मुझे मजबूरन तुमको हवालात में ही बन्द कर देना पड़ेगा।"

इस पर भी जुआरी अभी लेत-ओ-लाल (टाल-मटोल) ही कर रहे थे कि अचानक किसी के धड़ाम से ज़मीन पर गिरने की आवाज़ आयी। ये नक्कू था जो धोती खोले ज़मीन पर औंधा पड़ा था। उसे इस हाल में देखकर मनसुख की हिम्मत बँधी और उसने भी नक्कू की पैरवी कर ही दी। अकाउंटेंट मलिक इधर-उधर देख रहा था कि सिपाही ने पीछे से आ, गुद्दी से पकड़कर ज़बरदस्ती नीचे बिठा दिया और उसने नाचार अपने नेकर के बन्द खोल दिये।

सिपाही के इस सुलूक को देखकर दूसरे जुआरी आप ही आप ज़मीन पर लेट गये। सिर्फ़ चमड़ेवाले शेख़ जी खड़े रह गये। उनकी आँखों में आँसू भरे हुए थे और सूरत से इन्तिहा दर्जा की मज़लूमी (ज़ुल्म होने का भाव) बरस रही थी। उनका हाथ बार-बार कमरबन्द पर पड़ता था मगर वहीं रह जाता था। ऐसे मुअज़्ज़िज़ (इज़्ज़तदार) और शरीफ़ सूरत आदमी को ऐसी परेशानी में देखकर सिपाही का दिल पसीज गया और वो जानबूझकर वहाँ से टल गया। शेख़ जी ने दिल कड़ा किया। पगड़ी के शिमले से आँसू पोंछे। गर्दन फिराकर अपने इर्दगिर्द नज़र डाली और फिर इन्तिहाई मजबूरी के साथ बिलआख़िर (आख़िरकार) भी थानेदार के हुक्म की तामील कर दी।

सिरे पर लारी ड्राइवर था। सबसे पहले जूते लगाने की बारी उसी की थी। जिस वक़्त वो उठा तो नको ज़ोर से खँकारा- "मिर्ज़ा जी सँभलके" उसने कहा- "सब अपने ही आदमी हैं हाँ। देखने में ज़ोर का हाथ पड़े मगर...समझ गये ना..."

लारी ड्राइवर ने अभी पाँच तक ही गिनती की थी कि वही सिपाही थाने के दफ़्तर से निकला और हाथ के इशारे से रोक दिया।

"दारोग़ा साहब कहते हैं" उसने पास आकर कहा- "अगर तुम लोगों ने ठीक तरह से जूते न लगाये तो मैं अपने सिपाहियों से जूते लगवाऊँगा।" ये कहकर वो फिर चला गया।

जुआरियों ने मस्लेहत इसी में समझी कि ख़ुद ही आपस में ज़ोर-ज़ोर के जूते लगवा लें। चुनांचे कोई बीस मिनट के बाद, जब हर एक ने हर एक के दस-दस जूते लगा लिए तो वो उस काम से निमट कपड़े झाड़ उठ खड़े हुए। इतने में वही सिपाही फिर आया और कहने लगा- "जाओ, अबके दारोग़ा ने तुम्हारा क़ुसूर मुआफ़ कर दिया है। फिर कभी जुआ न खेलना।"

ये लोग थाने में से यूँ निकले जैसे अपने किसी बड़े ही अज़ीज़ क़रीबी रिश्तेदार को दफ़्न करके क़ब्रिस्तान से निकले हों। थाने से निकलकर कोई सौ गज़ तक तो वो चुपचाप गरदनें डाले चला किये। उसके बाद नको ने एकबारगी ज़ोर का क़हक़हा लगाया। इतने ज़ोर का कि वो हँसते-हँसते दुहरा हो गया। "क्यूँ देखा" उसने कहा- "न चालान, न मुक़द्दमा, न क़ैद, न जुर्माना। मैं न कहता था इसे मज़ाक़ ही समझो।"

मूल उर्दू से हिन्दी लिप्यंतरण तथा अनुवाद :

दीपक रूहानी

deepakruhani@gmail.com

दंपत्ति

फ्रैंज़ काफ़्का

(जर्मन भाषी बोहेमियन उपन्यासकार और कहानीकार फ्रैंज़ काफ़्का का जन्म जुलाई 03, 1883 ई. को प्राग (चेकिया) में हुआ। 20 वीं शताब्दी के अंतरराष्ट्रीय साहित्य में प्रमुख स्थान रखने वाले काफ़्का की मृत्यु जून 03, 1924 ई. को कीर्लिंग, क्लोस्टर्न्यूबर्ग (ऑस्ट्रिया) में हुई। इनका लेखन यथार्थवाद के नग्न स्वरूप से पाठक को परिचित कराता है।)

व्यापार है ही बुरी चीज़। मुझे ही लीजिए। दफ़्तर के काम से जब थोड़ी देर के लिए भी मुझे छुट्टी मिलती है तो मैं अपने नमूनों की पेटी उठाकर खुद ही अपने ग्राहकों से मिलने चल देता हूँ। बहुत दिनों से मेरी इच्छा एन. के पास जाने की थी। कभी एन. के साथ मेरा काफ़ी अच्छा कारोबार चल रहा था, लेकिन पिछले कुछ सालों से यह ठप्प पड़ गया था। क्यों ? यह तो मुझे भी नहीं पता। ऐसी बात तो कभी बिना सचमुच के किसी कारण के भी घट सकती है। आजकल समय ही ऐसा है कि किसी का महज़ एक शब्द भी सारे मामले को उलट-पलट कर रख सकता है जबकि एक ही शब्द सब कुछ ठीक-ठाक भी कर सकता है। दरअसल एन. के साथ कारोबार करना बड़ा नाज़ुक मामला है। वह एक बूढ़ा आदमी है और बुढ़ापे के कारण काफ़ी अशक्त भी हो गया है, फिर भी वह अपने कारोबारी मामलों को अपने ही हाथ में रखना पसंद करता है। अपने ऑफ़िस में तो वह आपको शायद ही कभी मिले और उससे मिलने के लिए उसके घर जाना एक ऐसा काम है जिसे कोई भी भला आदमी टालना ही पसंद करेगा ।

फिर भी कल शाम छह बजे मैं उसके घर के लिए निकल ही पड़ा। यह किसी से मिलने के लिए जाने का समय तो नहीं था पर मेरा वहाँ जाना कारोबारी कारण से था, कोई सामाजिक सद्भाव नहीं। सौभाग्य से एन. घर पर ही था। अभी वह अपनी पत्नी के साथ सैर करके लौटा था। नौकर ने बताया कि साहब इस समय अपने बेटे के सोने के कमरे में हैं। बेटा बीमार था। नौकर ने मुझसे वहीं जाने का आग्रह किया। पहले तो मैं थोड़ा हिचका। फिर सोचा कि क्यों न इस अप्रिय मुलाक़ात को जल्दी निपटा दिया जाए। इसलिए मैं उसी हालत में, यानी ओवरकोट और टोपी पहने, हाथ में नमूनों की पेटी लिए एक अँधेरे कमरे को पार करके एक नीम अँधेरे कमरे में दाख़िल हुआ, जहाँ तीन-चार लोग पहले से ही मौजूद थे ।

मेरी पहली नज़र जिस व्यक्ति पर पड़ी वह एक एजेंट था, जिसे मैं अच्छी तरह जानता था। एक तरह से वह मेरा कारोबारी प्रतिद्वन्द्वी था। मुझे लगा, वह मुझसे पहले ही बाज़ी मार ले गया। वह आराम से बीमार के बिस्तर के पास ही बैठा था, जैसे वह कोई डॉक्टर हो। अपने ओवरकोट के बटन खोले बैठा वह निर्लज्ज-सा लग रहा था। बीमार आदमी भी शायद अपने विचारों में खोया हुआ लग रहा था। उसके गाल बुखार से तप रहे प्रतीत हो रहे थे । वह बीच-बीच में उस आगंतुक की ओर भी देख लेता था। एन. का बेटा छोटी उम्र का नहीं था। वह लगभग मेरी ही उम्र का होगा। उसकी छोटी-सी दाढ़ी बीमारी के कारण छितरायी हुई थी।

बूढ़ा एन. लम्बा-तगड़ा आदमी था। उसके कंधे काफ़ी चौड़े थे। पर यह देखकर मुझे हैरानी हुई कि वह अब दुबला हो गया था। उसकी कमर भी झुक गयी थी। वह अशक्त हो गया था। उसने अभी तक अपना कोट नहीं उतारा था। वह अपने बेटे के कान में कुछ फुसफुसा रहा था। उसकी पत्नी छोटे क़द की दुबली और फुर्तीली महिला थी। ऊँचाई में काफ़ी फ़र्क़ होने के बावजूद वह अपने पति के कोट को उतारने में उसकी मदद करने लगी। हालाँकि शुरू में उसे दिक़्क़त हो रही थी, किंतु आख़िरकार वह इसमें सफल हो गयी। लेकिन असल दिक़्क़त तो एन. के अधैर्य के कारण थी। कोट अभी पूरा उतरा भी नहीं था कि वह अपने हाथों से आरामकुर्सी के हत्थे टटोलने लगा था। उसकी पत्नी ने कोट उतारते ही आरामकुर्सी जल्दी से उसके पास सरका दी और खुद उसका कोट उठा कर रखने चली गई। कोट उठाए हुए वह खुद उसके बीच में लगभग ढँक-सी गई थी।

***   ***   ***

आख़िरकार मुझे लगा कि वह समय आ गया है या यूँ कहूँ कि अपने-आप तो वह समय आता नहीं। मैंने सोचा कि जो कुछ करना है, मुझे जल्दी ही कर लेना चाहिए। मुझे लग रहा था कि कारोबारी बातचीत के लिए समय धीरे-धीरे प्रतिकूल होता जा रहा है। उस एजेंट के लक्षण तो मुझे ऐसे दिख रहे थे जैसे वह वहीं जमा रहना चाहता हो। यह मेरे हित में नहीं था, हालाँकि मैं वहाँ उसकी उपस्थिति को ज़रा भी अहमियत नहीं देना चाहता था। इसलिए मैंने बिना किसी भूमिका के झटपट अपने धंधे की बात शुरू कर दी, बावजूद इसके कि इस समय एन. अपने बीमार बेटे से बात करना चाह रहा था। दुर्भाग्य से यह मेरी आदत हो गई थी कि जब मैं अपनी असली बात पर आता हूँ-- जो कि आम तौर पर जल्दी ही होता है और इस मामले में तो समय और भी कम लगा-- तो मैं बात करते-करते खड़ा हो जाता हूँ और चहलक़दमी करने लगता हूँ। किसी दफ़्तर में तो यह हरकत बड़े ही स्वाभाविक तरह से हो सकती है, पर यहाँ बड़ा अटपटा लग रहा था। फिर भी मैं खुद को रोक नहीं पाया। इसका एक कारण और भी था। सिगरेट की बड़ी तलब लग रही थी। ठीक है, हर आदमी की कुछ बुरी आदतें होती ही हैं। दूसरी ओर, उस एजेंट की हालत देखकर मुझे बहुत राहत मिल रही थी। वह उद्विग्न लग रहा था। वह अचानक घुटने पर रखी अपनी टोपी उठा कर झटके से अपने सिर पर रख लेता था और फिर वहाँ उसे ऊपर-नीचे करता रहता। फिर अचानक उसे लगता कि उससे कोई ग़लती हो गई है। तब वह उस टोपी को अपने सिर से उतार कर वापस अपने घुटने पर रख देता। हर एक-आध मिनट में वह इन्हीं हरकतों को दोहराता जा रहा था। मुझे तो इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ रहा था, क्योंकि मैं तो चहलक़दमी करता हुआ अपने प्रस्तावों में पूरी तरह से खोया हुआ था और उसे अनदेखा कर रहा था, लेकिन उसकी ये हरकतें अन्य लोगों को ज़रूर आपे से बाहर कर रही होंगी ।

दरअसल मैं जब अपनी बात में पूरा रम जाता हूँ तो ऐसी हरकतों की ही क्या, किसी भी बात की परवाह नहीं करता। जो कुछ हो रहा होता है , उसे मैं देखता तो हूँ पर उस ओर तब तक कोई ध्यान नहीं देता, जब तक कि मैं अपनी बात पूरी न कर लूँ, या जब तक कोई दूसरा व्यक्ति किसी तरह की आपत्ति प्रकट न करे। इसलिए मैं सब कुछ देख रहा था। मसलन् एन. मेरी बात की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दे रहा था। कुर्सी के हत्थे को पकड़े वह बिना मेरी ओर देखे बेचैनी से कसमसाया। वह कहीं शून्य में टकटकी लगाए देख रहा था, जैसे कुछ ढूँढ़ रहा हो। उसके चेहरे को देखकर कोई भी समझ सकता था कि मेरे कहे हुए शब्दों से या सही कहें तो मेरी उपस्थिति से भी वह पूरी तरह अनभिज्ञ लग रहा था। उसकी और उसके बीमार बेटे की हालत मेरे लिए शुभ लक्षण नहीं थे, फिर भी मैंने स्थिति को क़ाबू में रख कर अपनी बात कहनी जारी रखी, जैसे मुझे विश्वास हो कि अपनी बात कह कर मैं सारा मामला फिर से ठीक कर लूँगा ।

मैंने एन. के सामने एक लाभकारी प्रस्ताव रखा, हालाँकि बिना माँगे ही जिस तरह की रियायतें देने की बात

मैंने कह दी थी, उसने खुद मुझे ही चौंका दिया। इस बात से मुझे बड़ा संतोष मिला कि मेरे प्रस्ताव ने उस एजेंट को चक्कर में डाल दिया था। उस पर एक सरसरी निगाह डालते हुए मैंने देखा कि अपनी टोपी को जहाँ-का-तहाँ छोड़कर अब उसने अपने दोनो हाथ अपनी छाती पर बाँध लिए थे। मुझे यह स्वीकार करने में हिचक हो रही है कि मेरे इस कृत्य का उद्देश्य उसे धक्का पहुँचाना भी था। अपनी इस जीत के उत्साह में मैं काफ़ी देर तक अपनी बात कहता रहा, लेकिन तभी उसके बेटे ने, जिसे मैं अपनी इस योजना में फ़ालतू चीज़ समझे बैठा था, बिस्तर से उठकर काँपते हाथों से मुझे धक्का दे दिया। हो सकता है वह कुछ कहना चाहता हो या किसी बात की ओर संकेत करना चाहता हो, लेकिन उसमें इसकी ताकत न हो। पहले तो मुझे लगा जैसे उसका दिमाग़ घूम गया हो, पर जब मैंने बूढ़े एन. पर एक उबाऊ नज़र डाली तो सारी बात मेरी समझ में आ गई।

एन. की खुली हुई आँखें भावशून्य और सूजी हुई थीं। लग रहा था जैसे उसे बहुत कमज़ोरी महसूस हो रही हो। वह काँप रहा था और उसका शरीर आगे की ओर झुका जा रहा था, जैसे कोई उसके कंधों को ठोक रहा हो। उसका निचला होठ या यूँ कहें कि निचला जबड़ा लटक गया था और वहाँ से झाग-सा बाहर आ रहा था। वह बड़ी मुश्किल से साँस ले पा रहा था। फिर अचानक जैसे उसे सारे कष्ट से मुक्ति मिल गयी हो, उसने कुर्सी पर पीठ टिका कर आँखें बंद कर लीं। दर्द का एक गहरा अहसास उसके चेहरे पर से गुज़रा और लगा जैसे सब कुछ ख़त्म हो गया हो।

मैं झटके से उसकी ओर गया और उसकी बेजान कलाई थाम ली। वह इतना ठंडा था कि एक बार तो ठंड की एक लहर मेरे पूरे शरीर में दौड़ गई। नब्ज़ थम गयी थी यानी सब ख़त्म हो गया था। कुछ भी हो , वह बहुत बूढ़ा हो गया था। काश हम सबको भी ऐसी मौत नसीब होती। लेकिन अब मैं क्या करूँ ? मैंने मदद के लिए आसपास देखा। उसके बेटे ने चादर सिर तक ओढ़ ली थी और उसकी सिसकियों की आवाज़ मैं साफ़ सुन रहा था। वह एजेंट तो किसी मछली की तरह ठंडा लग रहा था। वह एन. से दो क़दम दूर अपनी कुर्सी पर अचल बैठा था और लग रहा था कि वह कुछ नहीं कर पाएगा। इसलिए मैं ही वह एकमात्र व्यक्ति था , जो कुछ कर सकता था। बड़ा कठिन काम था उसकी पत्नी को उसकी मौत की ख़बर देना, और वह भी इस तरह कि वह उसे सहन कर सके। बगल के कमरे से मुझे उसकी पदचाप सुनाई देने लगी थी ।

*** *** ***

वह अभी तक बाहर वाले कपड़ों में ही थी। उन्हें बदलने का उसे अभी तक समय ही नहीं मिला था। वह अपने पति को पहनाने के लिए आग के सामने गरम करके घर के कपड़े लायी थी। हमें स्थिर बैठे देख उसने मुस्कराते और अपनी गर्दन हिलाते हुए कहा, " वे सो गए हैं।" अपने अपरिमित निर्दोष विश्वास के साथ उसने अपने पति की वही कलाई पकड़ी जो कुछ देर पहले मैंने पकड़ी थी और बड़े प्रमुदित मन से उस पर एक चुम्बन अंकित कर दिया। हम तीनों आश्चर्य से देखते ही रह गए कि एन. हिला और उसने जम्हाई ली। पत्नी ने उसे घर की क़मीज़ पहनाई और इतनी लम्बी सैर के लिए, जिसने उसे थका दिया था, उलाहना देने लगी। वह उस उलाहने को खीझ और व्यंग्य के भाव से सुनता रहा और जवाब में उसने कहा कि वह उकताने लगा था और उसी वजह से उसे नींद आ गई थी। और फिर कुछ देर आराम करने के लिए उसे बीमार के बिस्तर पर ही लेटा दिया गया। सिर के नीचे रखने के लिए उसकी पत्नी जल्दी से दो तकिये ले आई और बीमार के पायताने की ओर रख दिए। अपने कमरे में उसे इसलिए जाने नहीं दिया गया, क्योंकि वहाँ जाने के लिए एक ख़ाली कमरे से गुज़रना पड़ता था और उसमें उसे ठंड लग सकती थी ।

जो कुछ पहले घटा था, अब उसमें मुझे कोई विचित्रता नहीं लग रही थी। फिर एन. ने शाम का अख़बार माँगा और बिना अपने मेहमानों की ओर ज़रा भी ध्यान दिए अख़बार खोल लिया। वह ध्यान से अख़बार नहीं पढ़ रहा था। यूँ ही सरसरी तौर पर इधर-उधर निगाह डाल रहा था। उसने हमारे प्रस्तावों पर कुछ अप्रिय टिप्पणियाँ भी कीं। दरअसल उसने अपने हाथ को बड़े तिरस्कारपूर्ण ढंग से हिलाते हुए जिस तरह की तीखी टिप्पणियाँ की थीं उसमें इस बात की ओर स्पष्ट संकेत था कि कारोबार करने के हमारे तरीक़ों ने उसके मुँह का स्वाद ख़राब कर दिया है। यह सब सुनकर उस एजेंट ने भी एक-दो अप्रिय टिप्पणियाँ कर ही दीं। बेशक, जो कुछ घटा था, उसकी क्षतिपूर्ति का यह सबसे घटिया तरीका था। जल्दी ही मैंने उनसे विदा ले ली। मैं उस एजेंट का आभारी था, क्योंकि

यदि वह न होता तो मुझे वहाँ से खिसकने का इतना अच्छा मौक़ा न मिल पाता ।

***　　***　　***

बाहर निकलते हुए बरामदे में मुझे श्रीमती एन. मिल गईं। उनकी करुणमूर्ति को देखकर मैंने कहा कि उन्हें देखकर मुझे अपनी माँ की याद आ गई। उन्हें चुप देखकर मैंने आगे कहा, "लोग जो भी कहें, पर वह चमत्कार कर सकती थीं। जिन चीज़ों को हम तोड़-फोड़ देते , वह उन्हें फिर से ठीक कर देतीं। जब मैं बच्चा था, तभी उनकी मृत्यु हो गई थी।" मैंने यह बात बड़े धीरे-धीरे और सुस्पष्ट ढंग से कही। मेरा ख़्याल था कि वह वृद्धा ज़रा ऊँचा सुनती है, पर वह तो बिल्कुल भी नहीं सुन पाती थी, क्योंकि मेरी बात को बिना समझे उसने पूछा था, "मेरे पति आपके प्रस्ताव पर क्या कह रहे हैं ?" विदाई के दो चार शब्दों के बीच मुझे यह भी लगा कि वह मुझे एजेंट समझ रही है, अन्यथा वह अधिक विनयी होती।

फिर मैं सीढ़ियाँ उतर गया। उतरना चढ़ने से ज़्यादा थका देने वाला साबित हुआ, हालाँकि चढ़ना भी कोई आसान काम नहीं था। ओह, कितनी ही कारोबारी मुलाक़ातें ऐसी होती हैं जिनका कोई परिणाम नहीं निकलता है, पर इसके लिए हाथ पर हाथ धरे भी तो नहीं बैठा जा सकता और मुलाक़ातें करते रहना पड़ता है।

मूल जर्मन से हिन्दी लिप्यंतरण तथा अनुवाद
सुशांत सुप्रिय
sushant1968@gmail.com

पृष्ठ 76 का शेष...

बैठकर ताश खेला करता है; अपने घर में ले जाता है जहाँ एक लड़का अपने परिवार की धिक्कारों से तंग आकर रेल की पटरियां या नदी का पुल तलाशता फिरता है।" (पृष्ठ- 29-30)

"बात यह है कि पढ़ाई के इस ढंग को बदलना पड़ेगा। अब तक इस पढ़ाई से हो यह रहा है कि हम पढ़ते हैं और अपने माँ-बाप के खिलाफ हो जाते हैं, अपने गांव-घर के खिलाफ, अपने ही वर्ग के खिलाफ। हमें अपना घर गंदा और घिनौना लगने लगता है, गांव बेहूदा और घिसघिस। यह काम इतनी बारीकी और सफाई से होता है कि लड़के को पता तक नहीं चलता। यह पढ़ाई हमसे हमारा ही, हमारे कुनबे का आदमी छीन लेती है।" (पृष्ठ- 37)

"(विश्वविद्यालयों में) जब से कुछ मुदर्रिस- जिन्हें 'नॉर्मल' या जे.सी.टी. करके किसी पाठशाला में होना चाहिए था- इन भाषाओं की मदद से यहां प्रवेश पा गए हैं, तब से स्थिति गड़बड़ हो गई है। आप तो बातें करो लिखने-पढ़ने की और वे कहेंगे कि उनके ताल्लुकात शहर के फलां-फलां गुंडों (अधिकारियों/नेताओं) से हैं- जाहिर है कि आप एक-दूसरे के लिए अबूझ हो जाएंगे। तीसरी किस्म उन मुदर्रिसों की है जो पढ़ने-पढ़ाने की अपेक्षा अध्यक्ष को काबू में रखने के लिए विश्वविद्यालय के नियम-कानून में अधिक दिलचस्पी रखते हैं। सारी धाराएं और सारे अनुच्छेद उनकी जुबान पर हैं। (पृष्ठ- 39)

"हे बबुआ! अगर तुम्हें हमारी भाषा को अपनी लातों से रौंदना ही है तो तुम अंग्रेजी बोलो या हिंदी, हमारे लिए दोनों बराबर हैं।" (पृष्ठ- 59)

"लड़कों ने दूसरों की परवाह करना-उनके हितों के लिए लड़ना-असल मुद्दे को अपनी लड़ाई का मकसद बनाना सीखा न था। वे सीखने को तैयार भी न थे और लड़कों के मसले पर अपने को किसी भी मुसीबत में डालना लोग (जन सामान्य) बेवकूफी) समझ रहे थे।" (पृष्ठ- 72)

"भाषा का अर्थ है जीने की पद्धति, जीने का ढंग। भाषा यानी जनतंत्र की भाषा, जनतांत्रिक अधिकारों की भाषा, आजादी और सुखी जिंदगी के हक की भाषा।" (पृष्ठ- 100)

मध्यवर्गीय जीवन पर केंद्रित इस उपन्यास में निहित आंदोलन 'जन साधारण' की पीड़ा से पाठक को जोड़ता है। विश्वविद्यालयों से संबंधित गतिविधियों यथा- नियुक्ति, प्रोन्नति और अध्यापन के साथ प्राध्यापकों की निष्क्रियता को इस उपन्यास में सजगता के साथ उकेरा गया है। यह उपन्यास पाठक को आत्मकेंद्रित अनुभववाद से मुक्ति प्रदान कर सामाजिक-राजनीतिक मूल्यहीनता की ओर उन्मुख करता है।

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
madhurakshar@gmail.com

उड़िया से अनूदित

अतिथि

अपर्णा महांति

उस दिन कुछ भी प्रस्तुत नहीं था...
परंतु
फिर कभी न आने को
मैं बार बार चेतावनी देती रही-
मेरे आकांक्षित मुहूर्त्तों को।
दीप, अगरबत्ती, पूर्ण कलश-
शंख, हुलहुली[1]
पावों में पतली अलता
या देह में पट्टू साड़ी
कुछ भी नहीं था उस समय।
देह को छोड़ती, चली जाती
आत्मा जैसी
संपूर्ण अनाभरण
अधिकारशून्य था सत्ता।
निर्धारित नहीं हुआ था लग्न
उस दिन
कोई शुभ तिथि जैसी
किसी पंचांग में नहीं था
स्वतंत्र घोषणा पत्र।
फिर भी
उसी दिन ही वे आए।
टूटे हुए टाटी फरका-
उधड़े छप्पर को
अपने हाथों से ठीक किए
फर्श पर जमें धूल को
झाड़ दिये अपने पहने पहनावे में
कितने युगों के भस्म से
ढके हुए चूल्हे को
साफ कर आग सुलगाये
यह सब
क्या हो रहा है
मैं कुछ भी समझने से पहले
वह मेरे माथे पकड़ कर
गोद में जकड़े
मुख में आधार दिये
स्तब्ध हो गई थी मेरी श्रुति
उनके होंठ भी निस्पंद थे
किंतु
मेरी युगावधि के क्लांत
अतंद्र पलकें
स्पष्ट सुन पा रहे थे
सो जाओ
मैं जो हूँ पास में!
नींद खुली तो
पल्लू में गाँठ पड़ी थी, चिट्ठी एक
देखते ही देखते वह चिट्ठी
एक हल्दी [2]वसंत- हो गई
और मेरे बगीचे के
बौर भरे आम डाली की ओर उड़ गई।

1- हुलहुली- शुभ अवसरों पर ध्वनि चिन्ह (स्त्रीओं के द्वारा)
2- हल्दी-वसंत- एक पीले रंग की पक्षी। जिसको अंग्रेजी में Indian Golden Oriole (भारतीय सुनहरा ओरियल) पक्षी भी कहा जाता है।

मूल उड़िया से हिन्दी लिप्यंतरण तथा अनुवाद
दिब्य रंजन साहू
dibyosahu25@gmail.com

कृति-चर्चा

जिजीविषा और भाग्य के अंतर्द्वंद्व से जूझती जीवनगाथा : डार्क हॉर्स

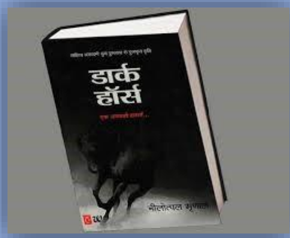

डार्क हार्स @ नीलोत्पल मृणाल, हिंद युग्म, नई दिल्ली

नीलोत्पल मृणाल के उपन्यास 'डार्क हॉर्स' को पढ़ना आरंभ किया तो लगा इसे समाप्त कर पाना शायद ही संभव हो। विशेषतः उनकी भूमिका में प्रयुक्त भाषा-शैली, जिसमें बनावटी शब्दों की भरमार कुछ अधिक ही महसूस हुई। भूमिका में दी गयी पंक्ति- "अंत में यही कहना चाहूंगा कि इस उपन्यास को इस कसौटी पर न कसा जाए कि इसे किसने लिखा है और क्यों लिखा है, बल्कि इसलिए पढ़ा जाए कि इसे किस विषय पर लिखा गया है और कितना सच लिखा गया है।" जितना प्रभावित करती है, विभिन्न आईएएस पदाधिकारियों, विभूतियों और पत्रकारिता-जगत के ख्यातिलब्ध समाचार-पत्रों/पत्रिकाओं के माध्यम से उल्लिखित अनुशंसाएं उतना ही खिन्न करती हैं। यह संभव है कि इन अनुशंसाओं का प्रयोग प्रकाशक द्वारा व्यावसायिक कारणों से किया गया है, लेकिन मुझे यह एहसास हुआ कि पहले से पाठक के दृष्टिकोण को प्रभावित करने का यह कुटिल प्रयत्न है। बहरहाल, उपन्यास के कथानक से जुड़ने के उपरांत उक्त खिन्नता स्वयमेव विलुप्त हो गयी। नीलोत्पल मृणाल के शब्दों में 'डार्क हार्स' अर्थात 'रेस में दौड़ता ऐसा घोड़ा जिस पर किसी ने भी दांव नहीं लगाया हो, जिससे किसी ने जीतने की उम्मीद न की हो और वही घोड़ा सबको पीछे छोड़ आगे निकल जाए।', कहने के लिए सिविल सर्विसेज की तैयारी कर रहे युवाओं को आधार बनाकर की गई है, लेकिन इसमें सिविल सर्विसेज से अधिक जीवन के विविध पहलू उभरकर सामने आते हैं, विशेषतः मध्यवर्गीय समाज के। अनेक प्रश्न सुलझ कर भी अनसुलझे रह जाते हैं, जैसे- गुरु का बार-बार साक्षात्कार तक पहुंचकर भी चयन न हो पाना, जबकि उसका चित्रण अच्छे अध्येता और वक्ता के रूप में किया गया है। मयूराक्षी का स्वयं परीक्षा से असंतुष्ट होने के पश्चात भी उत्तीर्ण और चयनित होना, और यह जानते हुए भी गुरु को गलतफहमी हुई है उसे छोड़ देना। संतोष द्वारा इतना अधिक श्रम के उपरांत भी चयन हेतु छिपकर अध्ययन करना, जबकि उसे अपने मित्रों विशेषतः उसी मकान में रहने वाले गुरु से हमेशा सही मार्गदर्शन और सहयोग ही मिलता था। भाषा के संबंध में कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि लेखक ने अपनी भूमिका में ही कह दिया है कि "इसे भाषाई स्वाभिमान का मुद्दा न बनाया जाए।" लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि अगर लेखक शब्द-चयन को लेकर सजग होता (कहीं-कहीं पर वह है भी) तो शायद यह कृति और अधिक उत्कृष्ट हो सकती थी। जैसा कि लेखक के परिचय से पता चलता है कि 'इन दिनों वह अपना भाग्य कवि-सम्मेलनों में आजमा रहे हैं, यह उसका प्रभाव भी हो सकता है। भाषा का प्रभाव गैर-हिंदी भाषी पाठकों को निराश करेगा। उनकी भाषा और अधिक अशुद्ध होने की संभावना है। खिचड़ी और पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार की बोलचाल की भाषा पूरे मुखर्जी नगर पर भारी है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि लेखक की दृष्टि में बिहार के अंचल-विशेष की भाषा को उकेरना हो। लेखक द्वारा इस उपन्यास में 'डार्क हॉर्स' के बहाने कही गयी 'एक अनकही दास्तां...' वस्तुतः प्रत्येक जीवन की दास्तां है। इस दास्तां को सफलतापूर्वक उकेरने के लिए निःसंदेह नीलोत्पल बधाई के पात्र हैं। उपन्यास के मुख्य पात्र संतोष की सश्रम सफलता के बावजूद साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार से पुरस्कृत यह उपन्यास जाने-अनजाने 'कर्म से अधिक भाग्य पर' विश्वास करने के लिए युवा पीढ़ी को प्रेरित करता है।

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
madhurakshar@gmail.com

कृति-चर्चा

विश्वविद्यालयीय-जीवन में व्याप्त असंतोष, आक्रोश, चाटुकारिता और व्यवस्था के मध्य युवा-संघर्ष का दस्तावेज़ : अपना मोर्चा

अपना मोर्चा @ काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

1967 ई. में छात्र-नेताओं के नेतृत्व में संचालित उत्तर भारत में होने वाले भाषा-आंदोलन को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास 'अपना मोर्चा' युवा आंदोलन का प्रथम प्रामाणिकउपन्यास माना जाता है। नवलेखन के दौर की अधिकांश विधाओं यथा- नयी कविता, नयी कहानी, नयी समीक्षा की तरह इस उपन्यास को भी 'नया उपन्यास' कह सकते हैं। कारण- यह उपन्यास अपनी पूर्ववर्ती उपन्यास-परंपरा से बिल्कुल भिन्न है। उपन्यास के प्रमुख तत्वों- उद्देश्य, कथानक, चरित्र, संवाद, भाषा-शैली और वातावरण का बिल्कुल नया स्वरूप इस उपन्यास में परिलक्षित होता है। 'अपना मोर्चा' घोषित रूप से किसी भी थोपे हुए उद्देश्य का विरोध कर विश्वविद्यालय के वास्तविक जीवन से पाठक को परिचित कराने का प्रयास करता है। जीवन में व्याप्त बिखराव की तरह इस उपन्यास के कथानक में भी बिखराव दिखाई देता है। 'अपना मोर्चा' उपन्यास में कथानक घटनाओं के माध्यम से निर्मित नहीं होता, बल्कि स्थितियों के माध्यम से संरचित होता है। काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास में छात्रों और उनके आंदोलन को जीवन के अनिवार्य अंग के रूप में चित्रित किया है। इस उपन्यास में वर्णित विश्वविद्यालय देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों और वहां के राजनीतिक जीवन के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। विविध भावभूमियों पर चिंतन के लिए विवश करती इस उपन्यास की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"महाशय, आप बहुत अच्छे हैं लेकिन चुप रहिए। आप विद्वान भी होंगे लेकिन बेकार हैं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आपको पढ़ाना भी न पड़े और तनख्वाह भी मिलती रहे ? आप यकीन करें, अगर हमारा बस चले तो हम महीने की हर पहली तारीख को आपके मुंह में हजार रुपये की गड्डी ठूंस दिया करें और निवेदन करें कि यदि आपको इसी में मजा मिलता हो तो यह लें मगर मेहरबानी करके वह मत पढ़ाइये जो हम नहीं पढ़ना चाहते।" (पृष्ठ-27)

"झुंझलाकर मैं पूछता हूँ कि मित्र! आखिर आप क्यों पढ़ रहे हैं ? इस पढ़ने का क्या मतलब ? वे स्याह पड़ जाते हैं। एकदम सन्नाटा। शातिर से शातिर लड़का भी सन्न रह जाता है। कोई तो बताए कि वे क्यों पढ़ रहे हैं ? यह सवाल अक्सर उन्हें अपने बाजार में ले जाता है जहाँ उनका साल-भर पहले का हँसमुख, मजाकिया, खूबसूरत और अपनी दिलफेंक हरकतों के कारण सरनाम साथी अपने चिथड़े चेहरे और बदन के साथ रिक्शे पर सीमेंट का पीपा लादे बस-स्टेशन की ओर जा रहा है; अपने गांव में ले जाता है जहाँ कलक्टर या कमिश्नर का सपना देखने वाला युवक बार-बार आवेदन-पत्र देता है और पूरे दिन

शेष पृष्ठ 73 पर...

कृति-चर्चा

मानवीय अहसासों की कविताओं का संग्रह : रस्सी पर चलती लड़की

रस्सी पर चलती लड़की @ भगवान वैद्य 'प्रखर', बोधि प्रकाशन जयपुर

निन्यानबे कविताओं के संग्रह 'रस्सी पर चलती लड़की' मानवीय जीवन के विविध अहसासों को अभिव्यक्ति प्रदान करती कविताओं का संग्रह है। विभिन्न भावभूमियों से विषयवस्तु को ग्रहण कर सहज-सरल भाषा में रची गयी कविताएं पाठक को स्वयं से अनायास ही जोड़ लेती हैं। जहां 'वह जानना चाहता है/दिन-पर-दिन क्यों बढ़ रही है दूरी/मम्मी और पापा के बीच ?' (बचपन, पृष्ठ-14) जैसी पंक्तियाँ विलुप्त होते बचपन के साथ रिश्तों के मध्य आ रही दूरियों के प्रति चिंतन करने पर पाठक को विवश कर देती हैं। वहीं 'कभी लगा/किताबों के लिए ही घर है/तो कभी यह कि/घर के श्रृंगार के लिए हैं किताबें' (कुछ याद नहीं, पृष्ठ-97) जैसी पंक्तियाँ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पुस्तकों की उपादेयता पर मंथन की मांग करती प्रतीत होती हैं। शब्द-चित्रों के माध्यम से नए प्रतीकों की उद्भावना रचनाकार की अपनी विशेषता है, देखें-

'बगिया में नानावर्ण फूलों के बीच
बहुत देर से खड़ी वह औरत
अपने आप में
न जाने क्या खोज रही थी
मैंने पास जाकर हौले-से
उसे कविता की एक पंक्ति ओढ़ा दी
और वह तितली बन गयी।'

'मैंने बैग से
कविता की पुस्तक निकाली
और एकेक कर पन्ने पलटने लगा कि
बस में, कुछ दूरी पर बैठा वह यात्री
पुस्तक की ओर
कुतूहल से ऐसे देखने लगा
जैसे पुस्तक 'पुस्तक' न होकर
वस्त्र बदलती हुई कोई स्त्री हो!' (दो शब्द-चित्र, पृष्ठ-24)

शेष पृष्ठ 51 पर...

कृति-चर्चा

जीवन के वैविध्य की रोचक पाती : संझा-बाती

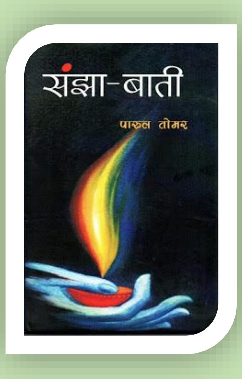

संझा-बाती @ पारुल तोमर, एपीएन पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, सं. 2019

ब्रश के माध्यम से जीवन की सफल अभिव्यक्तिकार डॉ. पारुल तोमर की 80 छोटी-बड़ी कविताओं का संग्रह 'संझा-बाती' जीवन-वैविध्य की यात्रा में पाठक को लेकर चलता है। सहज, सरल और लोक की शब्दावली में कवयित्री अपनी जीवनुभूति को पाठक के समक्ष जीवंत रूप में प्रस्तुत कर देती है। भावों का उद्दात्त स्वरूप संग्रह की पहली कविता 'ईश्वर' में ही दिखाई देता है-

"कटर-कटर गंडेरी को
नन्हें दाँतों से काटती
पिता की पीठ पर लदी
खुशी से उछलती लड़की के लिए
पिता, यकायक ईश्वर हो चले थे।" (पृष्ठ-22)

इस कविता में लोक के जीवंत चित्रण के साथ लोक-विश्वास और ईश्वर के तीनों परम स्वरूपों- ब्रह्मा, विष्णु और महादेव; का संयोजन पिता में अद्भुत कौशल के साथ अंकित है। जीवन और समाज में व्याप्त विभिन्न विचारधाराओं पर चिंतन-मनन इस संग्रह की अनेक कविताओं में कवयित्री ने सजगता के साथ किया है। स्त्रीत्व से संबंधित 'नदी खुश रहती है' की निम्नलिखित पंक्तियाँ पाठक को आत्ममंथन हेतु प्रेरित करने के साथ जीवन की सार्थकता से भी परिचित कराने का प्रयास करती हैं-

"नदी पूर्ण हुई थी किनारों में
स्त्रीत्व की सार्थकता जान
जीवन पा गयी थी जन-कल्याण में
नदी अब और भी खुश रहने लगी थी।" (पृष्ठ-33)

कुछ उद्धरण और-

"लड़कियाँ बचपन से ही कैसे सीख जाती हैं
सबके लिए हँसते-हँसते जीना।" (पृष्ठ-43)

"वह लड़की जो नहीं जानती है
अम्बेडकर और मार्क्स के सिद्धान्त
खरी नहीं उतरती सौंदर्य के पैमानों पर
फिर भी सारे भेदभाव मिटाना चाहती है।" (पृष्ठ-55)

"चिड़िया की दुनिया लड़की की दुनिया से
बिल्कुल अलग जो होती है।" (पृष्ठ-101)

"वह कहता रहा
वह हर रूप-रंग में ढलती गयी
वह तितली, चिड़िया, नदी नहीं थी
वह एक लड़की थी।" (पृष्ठ-135)

लोक में व्याप्त मान्यता का स्वरूप देखिए-

"बंद आँखों से देखे सपने अक्सर
टूटकर बिखर जाते हैं
और खुली आँखों से गढ़े सपने
हमेशा पूरे हो जाते हैं।" (पृष्ठ- 38)

इस मान्यता का प्रयोग देखिए-

" मैं भी रोज सुबह
अपने मन आंगन से
बंद आँखों से देखे सपनों की
अस्थियाँ समेटकर
विसर्जित कर देती हूँ।" (पृष्ठ- 39)

रिश्तों के शाश्वत स्वरूप को उद्घाटित करती 'पुनर्मिलन' कविता में प्रेम का उद्दात्त स्वरूप प्रकट हुआ है-

"तुम यकायक मेरा हाथ पकड़ कर
मुझे कनखियों से देखते बोले
चलो अपने घर चलते हैं
और तुम्हारी बची फीकी कॉफी
मीठी होने लगी थी
कॉफी हाउस मुस्कुरा उठा था।'' (पृष्ठ-45)

जीवन के प्रति सार्थक जीवंत आशक्ति की प्रभावी अभिव्यक्ति 'पुनरावृत्ति' कविता में दृष्टव्य है-

"और तब तुम, हाँ! तुम
रचना फिर से नयी कविता
जिसमें पुनरावृत्ति की मृत्यु
कभी मत होने देना।" (पृष्ठ-115)

यहाँ प्रयुक्त 'अपने घर' विविध विचारकों को पारिवारिक विघटन की समस्या से उबरने के लिए एक नूतन दृष्टि देने में पूर्ण समर्थ है। स्वयं-सिद्ध विचारकों पर पारुल जी का सरल-सहज, किंतु कठोर प्रहार पाठक का मन मोह लेता है-

" कला, साहित्य,
संस्कृति और राजनीति में
बाजीगरी दिखाकर
अहंकार के गीत लिखता
सुनी-अनसुनी गाथाएं रचकर
आस्तीन में रहकर डसता।" (पृष्ठ-96)

"कविता सुनने-बुनने और गढ़ने से
कहीं अधिक कठिन हो जाता है
खुद कविता का हिस्सा होना।" (पृष्ठ-129)

संग्रह की अधिकांश कविताएं जीवन के किसी न किसी पक्ष को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। पारुल जी की पंक्ति, जिसमें मेरे हृदय के स्वर भी मिले हुए हैं, शायद आपके भी...

"मुझे बहुत प्रिय है
वह कच्ची पगडंडी
जो शहर से मेरे गाँव की ओर जाती है।" (पृष्ठ-69)

यह पंक्तियाँ 'कच्ची पगडंडी' शीर्षक से संग्रहीत कविता से लिए गए हैं। मुझे तो तीन पंक्तियाँ ही पूर्ण कविता लगी। अगर आप चिंतन करके देखें तो इन पंक्तियों में जीवन की सरलता के साथ वैदुष्यपूर्ण विचारधाराओं का समागम दिखाई देगा। एक ऐसी अभिव्यक्ति जो प्रत्येक कलाकार का स्वप्न होती है, जिसे प्रत्येक रचनाकार करना चाहता है, और किसी न किसी रूप में करता है; वह 'शक के अंकुर' नामक कविता में कवयित्री ने सहज, सरल और मार्मिक ढंग से की है, देखें-

"कल मैंने एक लम्हें पर
'विश्वास' लिखना चाहा
पर असफ़ल रही
तभी तुम आए
शरारत से मुस्काये
तुमने उसी लम्हें पर
आसानी से 'शक' लिखा
तुरंत शक के अंकुर फूटे
सुबह होते होते
शहर में जंगल उग आए
शक के अंकुर कब
अफ़वाहों के जंगल बन गए
किसी को कानों-कान भी खबर न हुई
अभी-अभी रेडियो पर सुना
शहर में एक बार फिर
दंगों का तूफ़ान आया है।" (पृष्ठ-130)

-डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री
madhurakshar@gmail.com

पुस्तक-लोकार्पण

कश्मीर और कश्मीरी पंडित : अशोक कुमार पांडे

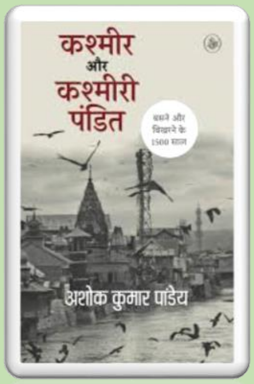

विश्व पुस्तक मेले के छठवें दिन राजकमल प्रकाशन के 'जलसाघर' के मंच से आशोक कुमार पांडे की किताब 'कश्मीर और कश्मीरी पंडित' का लोकार्पण किया गया। इस किताब में अशोक पांडे ने कश्मीर के 1500 साल के कश्मीर के इतिहास और कश्मीरी पंडित के पलायन का समय है। यह किताब कश्मीर के उथल-पुथल भरे इतिहास में कश्मीरी पंडितों के लोकेशन की तलाश करते हुए उन सामाजिक-राजनैतिक प्रक्रियाओं की विवेचना करती है जो कश्मीर में इस्लाम के उदय, धर्मान्तरण और कश्मीरी पंडितों की मानसिक-सामाजिक निर्मिति तथा वहाँ के मुसलमानों और पंडितों के बीच के जटिल रिश्तों में परिणत हुईं। साथ ही, यह किताब आज़ादी की लड़ाई के दौरान विकसित हुए उन अन्तर्विरोधों की भी पहचान करती है जिनसे आज़ाद भारत में कश्मीर, जम्मू और शेष भारत के बीच बने तनावपूर्ण सम्बन्धों और इस रूप से कश्मीर घाटी के भीतर पंडित-मुस्लिम सम्बन्धों ने आकार लिया।

अंजुरी भर चाउर : आशुतोष कुमार सिंह

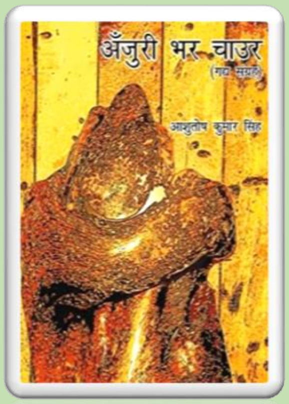

'अंजुरी भर चाउर' का लोकार्पण थीम पवेलियन में आशुतोष कुमार सिंह की पहली भोजपुरी किताब 'अंजुरी भर चाउर' का लोकार्पण लोकगायिका मालिनी अवस्थी ने किया। प्रो. मुन्ना पांडेय (दिल्ली विश्वविद्यालय) के शब्दों में- "आशुतोष कुमार सिंह के किताब 'अँजुरी भर चाउर' भोजपुरी आंदोलन जवने दौर से गुजर रहल बा ओकर लेखा-जोखा देबे वाली किताब बा। भोजपुरियो के अदहन खौलि रहल बा ओकर हाल-चाल ई किताब दे रहल बा। भोजपुरी जवन लडाई लड़ि रहल बा, आ जेतना मोर्चा प लड़ि रहल बा ओ सब के कहानी एम़े देहल बा। ... किताब के बारे में : जेनरिक मेडिसिन के प्रति भारतीय जनमानस के भीतर चेतना के लौ जगावत आशुतोष कुमार सिंह आपन "अँजुरी भर चाउर" लेके भोजपुरी समाज के सौंप रहल बाड़न। आज जबकि भोजपुरी में अधिकतर लेखन मात्र रचनात्मक रह गईल बा ओइमे एगो सुगठित, सुचिंतित पुस्तक के जरूरत महसूस होत रहल ह, जवना में आज के सामयिक सवाल आ भोजपुरी के नयका तेवर होखे। आशुतोष जी के लेखनी में भोजपुरी भाषा के भविष्य के दर्शन हो रहल बा। चार खण्ड बँटल एह पुस्तक में विषय के वैविध्य बा। मसलन, लेखक अगर भाषा आ बोली के सवाल उठा रनल बा त ओहिजा इंटरनेट के दुनिया में भोजपुरी के उपस्थिति भी बा। लेकिन हमरा देखे में सुंदर सुभूमि भैया से लेके रामजी के चिरई आ ओका बोका जइसन शीर्षक के साथ आपन बात राखत आशुतोष जी भोजपुरी गद्य लेखन में एगो शुष्ठु प्रयोग कर रहल बाड़न। आशुतोष के पत्रकारिता के लंबा अनुभव एक तरफ भाषा बोली विवाद पर बड़ा सटीक आ तार्किक पक्ष देता त गांधीवादी मॉडल के ऐक्टिविसज्म वाला वैचारिकी परिश्रम आनंद पर भी बतिया रहल बा । शेष इहे कि आशुतोष जी के किताब पढ़ी सभे आ स्वागत करीं भोजपुरी समाज में एगो ऊर्जावान भविष्यदर्शी आ तार्किक लेखक के जवन भोजपुरी के पक्ष में अपना तीक्ष्ण गद्य लेखन से भोजपुरी साहित्य के समकालीन लेखनी में आपन सार्थक हस्तक्षेप कईले बाड़न।"

पुस्तक-लोकार्पण

वाया मीडिया : गीताश्री

विश्व पुस्तक मेले में वाणी प्रकाशन के स्टाल पर सुप्रसिद्ध कलाकार एवं पत्रकार गीताश्री के उपन्यास्त्रयी 'वादा मीडिया' का लोकार्पण किया गया। यह उपन्यास नब्बे के दशक की महिला पत्रकारों के जीवन तथा उनकी चुनौतियों पर आधारित है। गीताश्री का लम्बा लेखकीय जीवन एक सशक्त पत्रकार और स्त्रीवादी मुद्दों पर रोशनी डालते सृजनात्मक लेखन को मूर्त रूप देते हुए बीता है। 2017 में गीताश्री के पहले उपन्यास 'हसीनाबाद' की लोकप्रियता के बाद इनकी पहली उपन्यासत्रयी 'वाया मीडिया' है। 'वाया मीडिया' उपन्यासत्रयी तीन दशकों में बँटी है- 1990 से 2000 (पहला खण्ड), 2000 से 2010 (दूसरा खण्ड) और 2010-2020 (तीसरा खण्ड)। इन कालखण्डों में उपनिवेश, मंडल कमीशन, नये रोज़गार, नयी सरकार, नया सोशल मीडिया, नयी जीवनशैली, बदलते परिवार, बदलती महिला और उसके रिश्ते, फ़िर बेरोज़गारी, तेज़ी से बदलता भारत और उससे भी ज़्यादा तेज़ी से बदलती महिलाओं की न्यूज़ रूम में उपस्थिति- यह सभी उपन्यास के कैनवास का हिस्सा हैं।

बिसात पर जुगनू : वंदना राग

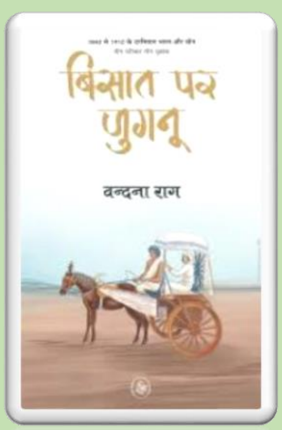

वन्दना राग मूलतः बिहार के सिवान ज़िले से हैं। जन्म इन्दौर मध्य प्रदेश में हुआ और पिता की स्थानान्तरण वाली नौकरी की वजह से भारत के विभिन्न शहरों में स्कूली शिक्षा पाई। 1990 में दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. किया। पहली कहानी हंस में 1999 में छपी और फिर निरन्तर लिखने और छपने का सिलसिला चल पड़ा। तब से कहानियों की चार किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं— यूटोपिया, हिजरत से पहले, ख़्यालनामा और मैं और मेरी कहानियाँ। 'बिसात पर जुगनू: सदियों और सरहदों के आर-पार की कहानी है। हिन्दुस्तान की पहली जंगे-आज़ादी के लगभग डेढ़ दशक पहले के पटना से शुरू होकर यह 2001 की दिल्ली में ख़त्म होती है। बीच में उत्तर बिहार की एक छोटी रियासत से लेकर कलकत्ता और चीन के केंटन प्रान्त तक का विस्तार समाया हुआ है। यहाँ 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की त्रासदी है तो पहले और दूसरे अफ़ीम युद्ध के बाद के चीनी जनजीवन का कठिन संघर्ष भी। 'बिसात पर जुगनू' के संबंध में लोकार्पण अवसर पर राजकमल प्रकाशन समूह के प्रबंध निदेशक अशोक माहेश्वरी का वक्तव्य दर्शनीय है- "इस उपन्यास को पढ़ते हुए हम कुछ तो इस बारे में सोचने के लिए विवश होंगे। किताब भाषा की बात करती है। चीन में आज भी बहुत कम लोग अंग्रेज़ी समझने वाले हैं। वे अपना सारा काम अपनी भाषा में करते हैं, विज्ञान की खोजें भी, यहां तक कि कम्प्यूटर पर काम भी। उन्होंने अपने बच्चों पर एक अतिरिक्त गैरजरूरी बोझ नहीं डाला। मुझे लगता है चीन, जापान आदि देशों के विकसित होने का बड़ा कारण अपनी भाषा में सोचना और काम करना है।"

प्रस्तुति : **राम सुभाष**
shubhmaurya0@gmail.com

ज्ञानपीठ पुरस्कार,2019

ज्ञानपीठ पुरस्कार भारतीय ज्ञानपीठ न्यास द्वारा भारतीय साहित्य के लिए दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार है। भारत का कोई भी नागरिक जो आठवीं अनुसूची में बताई गई 22 भाषाओं में से किसी भाषा में लिखता हो इस पुरस्कार के योग्य है। पुरस्कार में ग्यारह लाख रुपये की धनराशि, प्रशस्तिपत्र और वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा दी जाती है। 1965 में एक लाख रुपये की पुरस्कार राशि से प्रारंभ हुए इस पुरस्कार को 2005 में सात लाख रुपए कर दिया गया जो वर्तमान में ग्यारह लाख रुपये हो चुका है। 2005 के लिए चुने गये हिन्दी साहित्यकार कुंवर नारायण पहले व्यक्ति थे जिन्हें सात लाख रुपए का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार 1965 में मलयालम लेखक जी शंकर कुरुप को प्रदान किया गया था। उस समय पुरस्कार की धनराशि एक लाख रुपए थी। 1962 तक यह पुरस्कार लेखक की एकल कृति के लिये दिया जाता था। लेकिन इसके बाद से यह लेखक के भारतीय साहित्य में संपूर्ण योगदान के लिये दिया जाने लगा। अब तक हिन्दी तथा कन्नड़ भाषा के लेखक सबसे अधिक सात बार यह पुरस्कार पा चुके हैं। यह पुरस्कार बांग्ला को पाँच बार, मलयालम को चार बार, उड़िया, उर्दू और गुजराती को तीन-तीन बार, असमिया, मराठी, तेलुगू, पंजाबी और तमिल को दो-दो बार मिल चुका है। प्रख्यात मलयाली कवि अक्कीतम अच्युतन नंबूदिरी को 55वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अक्कीतम अच्युतन नंबूदिरी को 55 वें ज्ञानपीठ पुरस्कार, 2019 प्रदान किया गया। उन्होंने कविताओं के अलावा नाटक संस्मरण, आलोचनात्मक निबंध, बाल साहित्य और अनुवाद का कार्य किया। उनकी कविताओं में भारतीय दार्शनिक व सामाजिक मूल्यों का समावेश मिलता है जो की आधुनिकता और परम्परा के बीच एक सेतु की तरह है। अक्कीतम ने अब तक 55 किताबों का लेखन किया है, इनमें से 45 तो कविता संग्रह है। पदमश्री से सम्मानित अक्कीतम को 1973 में साहित्य आकादमी पुरस्कार, 1972 और 1988 में केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार के अलावा मातृभूमि पुरस्कार और कबीर सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।

प्रस्तुति : **राम सुभाष**
shubhmaurya0@gmail.com

साहित्य अकादमी पुरस्कार भारत में एक साहित्यिक सम्मान है, जो साहित्य अकादमी प्रतिवर्ष भारत की अपने द्वारा मान्यता प्रदत्त प्रमुख भाषाओं में से प्रत्येक में प्रकाशित सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक कृति को पुरस्कार प्रदान करती है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल 22 भारतीय भाषाओं के अलावा राजस्थानी और अंग्रेज़ी भाषा; अर्थात कुल 24 भाषाओं में प्रदान किया जाता हैं। पहली बार ये पुरस्कार सन् 1955 में दिए गए। साहित्य अकादमी पुरस्कार के अंतर्गत एक ताम्रपत्र के साथ नक़द राशि दी जाती है। साहित्य अकादेमी द्वारा अनुवाद पुरस्कार, बाल साहित्य पुरस्कार एवं युवा लेखन पुरस्कार भी प्रतिवर्ष विभिन्न भारतीय भाषाओं में दिए जाते हैं, इन तीनों पुरस्कारों के अंतर्गत सम्मान राशि पचास हजार नियत है।पुरस्कार की स्थापना के समय पुरस्कार राशि पाँच हजार रुपए थी, जो सन् 1983 में ब़ढा कर दस हजार रुपए कर दी गई और सन् 1988 में ब़ढा कर इसे पच्चीस हजार रुपए कर दिया गया। सन् 2001 से यह राशि चालीस हजार रुपए की गई थी। सन् 2003 से यह राशि पचास हजार रुपए कर दी गई है। नक़द राशि इस समय एक लाख रुपए है। साहित्य अकादमी ने 18 दिसम्बर 2019 को 23 लोगों को साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए चुना गया | जिनको 24 फरवरी 2020 को दिल्ली में ताम्रपत्र और एक लाख रूपये के नकद पुरस्कार के साथ सम्मानित किया गया।

साहित्य अकादमी पुरस्कार 2019 पूर्ण सूची: एक नजर में

लेखक	पुस्तक	भाषा
शशि थरूर	एन इरा ऑफ डार्कनेस	अंग्रेजी
नंदकिशोर आचार्य	छीलते हुए अपने को	हिन्दी
जयश्री गोस्वामी महंत	चाणक्य	असमिया
एलबिरमंगल सिंह .	ई अमादी अदुनगीगी ईठत	मणिपुरी
चोधर्मन .	सूल	तमिल
बंदि नारायणा स्वामी	सेप्ताभूमि	तेलुगु
फुकन चन्द्र बसुमतारी	आखाइ आथुमनिफ्राय	बोडो
निलबा आखांडेकार .	धवर्डस	कोंकणी
कुमार मनीष अरविन्द	जिनगीक ओरिआओन करैत	मैथिली
वीमधुसूदनन . नायर	अचन पिरन्ना वीदु	मलयालम
अनुराधा पाटील	कदाचित अजूनही	मराठी
पेन्नामधुसूदनः-	प्रज्ञाचाक्षुषम्	संस्कृत
अब्दुल अहद हाज़िनी	अख़ याद अख़ कयामत	कश्मीरी
तरुण कांति मिश्र	भास्वती	ओड़िया
किरपाल कज़ाक	अंतहीन	पंजाबी
रामस्वरूप किसान	बारीक बात	राजस्थानी
काली चरण हेम्ब्रम	सिसिरजली	संथाली
ईश्वर मूरजाणी	जीजल	सिंधी
चिन्मय गुहा	घुमेर दरजा थेले	बाड्ला
ओम शर्मा जन्द्रयाड़ी	बंदरालता दर्पण	डोगरी
रतिलाल बोरीसागर	मोजमा रेवुं रे	गुजराती
विजया	कुड़ी एसारू	कन्नड़
शफी किदवई	सवनेहएक बाज़दीद : सर सैयद-	उर्दू

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन, अमेरिका द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा-कविता सम्मान घोषित

ममता कालिया, उषाकिरण ख़ान, अनिलप्रभा कुमार, प्रज्ञा, रश्मि भारद्वाज तथा गरिमा संजय दुबे होंगी सम्मानित

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका ने अपने प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन ने अपने कथा-कविता सम्मान घोषित कर दिए हैं। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन सम्मानों की चयन समिति के संयोजक पंकज सुबीर ने बताया कि 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन लाइफ़ टाइम एचीवमेंट सम्मान' हिन्दी की वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिया को प्रदान किए जाने का निर्णय लिया गया है सम्मान के तहत इक्यावन हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। वहीं 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' उपन्यास विधा में वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री उषाकिरण ख़ान को वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'अगनहिंडोला' हेतु तथा कहानी विधा में प्रवासी कहानीकार अनिलप्रभा कुमार को भावना प्रकाशन से प्रकाशित उनके कहानी संग्रह 'कतार से कटा घर' हेतु प्रदान किए जाएँगे, दोनो सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। शिवना प्रकाशन के सम्मानों की चयन समिति के संयोजक श्री नीरज गोस्वामी ने बताया कि 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कथा सम्मान' हिन्दी की चर्चित लेखिका प्रज्ञा को लोकभारती प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' के लिए, 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कविता सम्मान' महत्त्वपूर्ण कवयित्री रश्मि भारद्वाज को सेतु प्रकाशन से प्रकाशित उनके कविता संग्रह 'मैंने अपनी माँ को जन्म दिया है' के लिए प्रदान किया जाएगा दोनो सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कृति सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित कहानी संग्रह 'दो ध्रुवों के बीच की आस' के लिए कथाकार गरिमा संजय दुबे को प्रदान किया जाएगा, सम्मान के तहत ग्यारह हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका तथा शिवना प्रकाशन द्वारा हर वर्ष साहित्य सम्मान प्रदान किए जाते हैं। पिछले वर्ष यह सम्मान भोपाल में आयोजित एक भव्य समारोह में प्रदान किए गए थे। चूँकि इस वर्ष यह आयोजन किया जाना किसी भी प्रकार से संभव नहीं है इसलिए सम्मानित रचनाकारों को इस वर्ष यह सम्मान एक ऑनालाइन कार्यक्रम में प्रदान किए जाएँगे। अगले वर्ष 2021 के सम्मान प्रदान करने के लिए आयोजन किया जाएगा तो उसमें इस वर्ष के सम्मानित रचनाकारों को भी मंच पर सम्मानित किया जाएगा। ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका का यह चतुर्थ सम्मान समारोह है। हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री, संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा उनके पति डॉ. ओम ढींगरा द्वारा स्थापित इस फ़ाउण्डेशन के यह सम्मान इससे पूर्व उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, महेश कटारे, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, डॉ. कमल किशोर गोयनका, मुकेश वर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ तथा प्रो. हरिशंकर आदेश को प्रदान किया जा चुका है। जबकि शिवना सम्मान का यह दूसरा वर्ष है, इससे पूर्व गीताश्री, वसंत सकरगाए तथा ज्योति जैन को प्रदान किया जा चुका है।

भावभीनी श्रद्धांजलि

हिन्दी के आधुनिक गद्य-साहित्य में सब से महत्वपूर्ण लेखकों में गिने जाने वाले **कृष्ण बलदेव वैद** ने डायरी लेखन, कहानी और उपन्यास विधाओं के अलावा नाटक और अनुवाद के क्षेत्र में भी अप्रतिम योगदान दिया है। अपनी रचनाओं में उन्होंने सदा नए से नए और मौलिक-भाषाई प्रयोग किये जो पाठक को 'चमत्कृत' करने के अलावा हिन्दी के आधुनिक-लेखन में एक खास शैली के मौलिक-आविष्कार की दृष्टि से विशेष अर्थपूर्ण हैं। कृष्ण बलदेव वैद अपने दो कालजयी उपन्यासों- उसका बचपन और विमल उर्फ़ जाएँ तो जाएँ कहाँ के लिए सर्वाधिक चर्चित हुए हैं। एक मुलाक़ात में उन्होंने कहा था- "साहित्य में डलनेस को बहुत महत्व दिया जाता है। भारी-भरकम और गंभीरता को महत्व दिया जाता है। आलम यह है कि भीगी-भीगी तान और भिंची-भिंची सी मुस्कान पसंद की जाती है। और यह भी कि हिन्दी में अब भी शिल्प को शक की निगाह से देखा जाता है। बिमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ को अश्लील कहकर खारिज किया गया। मुझ पर विदेशी लेखकों की नकल का आरोप लगाया गया, लेकिन मैं अपनी अवहेलना या किसी बहसबाजी में नहीं पड़ा। अब मैं 82 का हो गया हूँ और बतौर लेखक मैं मानता हूँ कि मेरा कोई नुकसान नहीं कर सका। जैसा लिखना चाहता, वैसा लिखा। जैसे प्रयोग करना चाहे किए।" 6 फरवरी, 2020 को कृष्ण बलदेव वैद काअमेरिका के न्यूयार्क में देहांत हो गया। वे 92 वर्ष के थे वह इन दिनों अपने परिवार के साथ अमेरिका रह रहे थे।

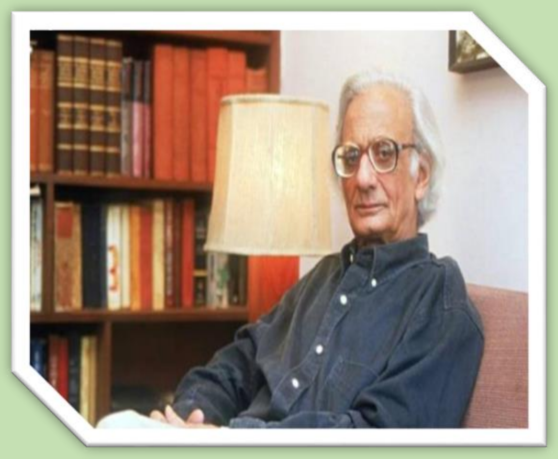

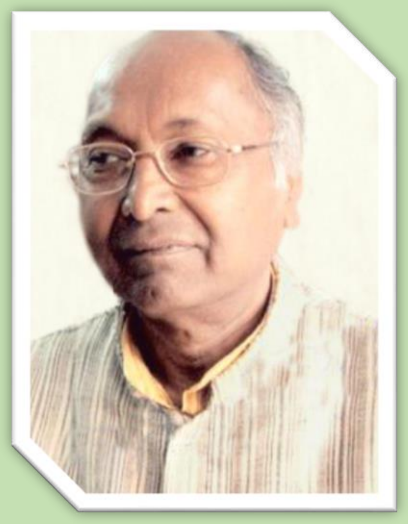

गिरिराज किशोर हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक सशक्त कथाकार, नाटककार और आलोचक थे। इनके सम-सामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहे हैं। इनका उपन्यास ढाई घर अत्यन्त लोकप्रिय हुआ था। वर्ष 1991 में प्रकाशित इस कृति को 1992 में ही साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कर दिया गया था। गिरिराज किशोर द्वारा लिखा गया पहला गिरमिटिया नामक उपन्यास महात्मा गाँधी के अफ़्रीका प्रवास पर आधारित था, जिसने इन्हें विशेष पहचान दिलाई। 83 वर्ष की उम्र में 9 फरवरी, 2020 को गिरिराज किशोर का देहावसान हो गया। इनके प्रमुख कहानी संग्रह- नीम के फूल, चार मोती बेआब, पेपरवेट, रिश्ता और अन्य कहानियां, शहर -दर -शहर, हम प्यार कर लें, जगत्तारनी एवं अन्य कहानियां, वल्द रोजी, यह देह किसकी है ?, प्रमुख उपन्यास- लोग, चिडियाघर, दो, इंद्र सुनें, दावेदार, तीसरी सत्ता, यथा प्रस्तावित, परिशिष्ट, असलाह, अंर्तध्वंस, ढाई घर, यातनाघर और पहला गिरमिटिया है। इन्होंने नरमेध, प्रजा ही रहने दो, चेहरे - चेहरे किसके चेहरे, केवल मेरा नाम लो, जुर्म आयद, काठ की तोप शीर्षक से हिंदी नाती-साहित्य को समृद्ध किया।

भावभीनी श्रद्धांजलि

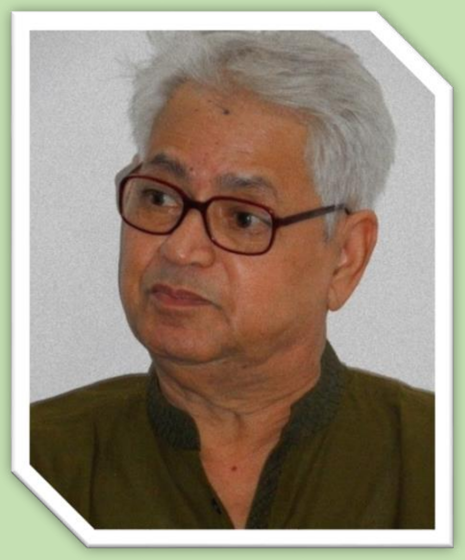

पटना विश्वविद्यालय में आधी सदी से ज्यादा समय तक प्रोफेसर रहे नवल जी, अध्ययन और अनुभव से उपजे ज्ञान के लिए तो जाने ही जाते थे, अपने बेबाक बोलों के लिए भी पहचाने जाने जाते थे। आलोचक **नंदकिशोर नवल** ने 83 साल की उम्र में 12 मई को इस दुनिया से विदा ली। नंदकिशोर नवल का साहित्यिक जीवन कई साहित्यिक पीढ़ियों के संसर्ग से समृद्ध हुआ। इस संबंध में डॉ. अपूर्वनंद का वक्तव्य द्रष्टव्य हा- "वैशाली के एक छोटे से गांव में अपने मास्टर साहब और पुस्तकालय से उन्होंने साहित्यिक यात्रा का आरंभ किया। साहित्यिक रुचि का निर्माण उत्तर छायावादी दौर में हुआ, लेकिन जल्दी ही नई कविता से उनका परिचय हुआ और उनके सामने एक नई खिड़की सी खुल गई। अकविता और अकहानी, युवा कविता, भूखी पीढ़ी, श्मसानी पीढ़ी की भीषण उथल-पुथल और रोमांचकारी बहसों में वे शामिल हुए। इस समय के स्वभाव के अनुसार ही उन्होंने 'ध्वजभंग' और 'सिर्फ' नामक पत्रिकाएं भी निकालीं। इसी समय वे नक्सलवादी आंदोलन के संपर्क में आए और उनकी राजनीतिक सक्रियता आरंभ हुई। कुछ वक्त बाद वे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए। इस रूप में भी वे एक समर्पित कार्यकर्ता थे। पार्टी से उनका लगाव और उसके प्रति उनका समर्पण पूरा था। पिछली सदी के आठवें दशक में जब प्रगतिशील लेखक संघ का पुनर्गठन हुआ तो वे जोश के साथ उसमें संगठनकर्ता के तौर पर सक्रिय हुए। उनकी और खगेंद्र ठाकुर की जोड़ी के बिना बिहार प्रगतिशील लेखक संघ का कार्यक्रम संभव न था। इस दौर में बने उनके मार्क्सवादी आग्रह ने उन्हें साहित्य को पढ़ने की एक अलग निगाह दी। इसी कारण उन्हें मार्क्सवादी आलोचक माना जाता है। लेकिन कोई दो दशक बाद वे नामवर सिंह की इस बात से सहमत हुए कि लेखक या आलोचक के आगे मार्क्सवादी जैसे विशेषण की कोई जरूरत नहीं। इस दरमियान उन्होंने जो लिखा उस पर यह मार्क्सवादी आग्रह हावी दिखता है। चाहे 'प्रेमचंद का सौन्दर्यशास्त्र' हो या 'कविता की मुक्ति,' इन संकलनों के निबंधों में इसी दृष्टिकोण से लेखकों पर विचार किया गया है। लेकिन साहित्य मात्र की अपनी सत्ता को लेकर भी वे सजग थे. लेखक को उसकी सारी जटिलता में अपने लिए उद्‌घाटित करना आलोचक का दायित्व है, इस समझ ने उन्हें जड़ हो जाने से बचा लिया।" वरिष्ठ आलोचक नंदकिशोर नवल की प्रमुख कृतियाँ- कविता की मुक्त, हिंदी आलोचना का विकास, मुक्तबोध: ज्ञान और संवेदना इनकी आलोचना पुस्तकें हैं। ये कसौटी पत्रिका का संपादन कार्य भी करते रहे हैं। उन्होंने निराला रचनावली, दिनकर रचनावली, रुद्र समग्र जैसे ग्रंथों का संपादन किया है।

साहित्य और अदब का एक जगमगाता सितारा अस्त हो गया। सर्वेश चंदोसवी का निधन दिनांक 25 मई, 2020 को हो गया। वे 71 वर्ष के थे। उर्दू के जानकार **सर्वेश चंदोसवी** अपने गीत, ग़ज़ल, नज़्मों के लिए अपने देश तो क्या विदेशों में भी बेहद ख्याति प्राप्त हु ई।इतना ही नहीं, उन्होंने हर विधा में अपनी लेखनी का जादू बिखेरा,गीत,कविताएं, शायरी, कहानियां, नज़्में, ग़ज़ल, जिसके लिए वह युगों युगांतर तक याद किये जायेंगे। सर्वेश चंदोसवी का चले जाना साहित्य जगत की बहुत बड़ी क्षति है, जिसकी भरपाई करना नामुमकिन है। उनके पाठक, मंचो के श्रोता ,और दर्शकों और उनके शागिर्दों की एक बड़ी संख्या है, जो उन्हें हृदय से प्रेम करते थे,करते हैं और हमेशा करते रहेंगे। उनका नाम लिम्का बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में भी है, वो यह है कि 2014 के बाद यानी कि 2015 में उनकी स्वरचित 15 किताबें,2016 में 16 किताबें,2017 में 17 किताबें, 2018 में 18 किताबें, 2019 में 19 किताबें और 2020 में 20 किताबों की योजना थी, इस अनूठी पहल के लिए भी सदा याद किये जायेंगे।

प्रस्तुति : **राम सुभाष**
shubhmaurya0@gmail.com